सत्यमेव जयते

भारत सरकार

विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय

भारत के विधि आयोग की चौरानवीं रिपोर्ट

विषय—अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य:

भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 में प्रस्तावित धारा 166क

सं० एफ० 2/7/83-वि० अ०

न्यायमूर्ति के० के० मैथ्यू

अध्यक्ष,
विधि आयोग, भारत सरकार,
शास्त्री भवन, नई दिल्ली
28 अक्तूबर, 1983

प्रिय मंत्री जी,

मैं, "अवैध या अनुचित रूप से अभिप्राप्त साक्ष्य : प्रस्तावित धारा 166क, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872" पर विधि आयोग की चौरानवीं रिपोर्ट भेज रहा हूं।

2. इस विषय पर विधि आयोग ने स्वयं ही कार्य आरंभ किया था। इस विषय पर कार्य आरंभ करने की आवश्यकता को रिपोर्ट के पैरा 1.3 में स्पष्ट किया गया है।

3. आयोग, रिपोर्ट तैयार करने में श्री पी० एम० बख्शी, अंशकालिक सदस्य और श्री ए० के० श्रीनिवासमूर्ति, सदस्य-सचिव के बहुमूल्य सहयोग के लिए आभारी है।

सादर,

भवदीय,

के० के० मैथ्यू

श्री जगन्नाथ कौशल,
विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्री,
नई दिल्ली-11

संलग्नक : 94वीं रिपोर्ट

भारत के विधि आयोग की 28 अक्तूबर, 1983 को प्रकाशित चौरानवीं रिपोर्ट का शुद्धिपत्र

पृष्ठ सं०	पैरा सं०	पंक्ति सं०	के स्थान पर	पढ़ें
विषय सूची का पृष्ठ	—	5	आस्ट्रेलिया में स्थिति ।	आस्ट्रेलिया और न्यूजी-लैंड में स्थिति ।
—,,—	—	11	विचाराधीन	विचारणीय
1.	1.2	2	काननी	कानूनी
3.	2.2	7	निर्णयन	निर्णयज
4.	2.6	4	निर्णायज	निर्णयज
5.	3.4, दूसरा पैरा	3	विस्ता	विस्तार
11.	4.7	2	इनसे बोझिल	इससे बोझिल
11.	4.8	5	की अपवर्जित	को अपवर्जित
13.	4.11, तृतीय पैरा	1	बड़ा लाम	बड़ा लाभ
19.	7.1	3	ृष्टिकोण	दृष्टिकोण
19.	7.1, दूसरा पैरा	2	उल्लं न	उल्लंघन
22.	7.12, 178.16(3) (ख)	2	रोक पता	रोक कर पता
23.	7.14	2	पुसिल	पुलिस
26.	7.22	16	पुलिस इस	पुलिस को इस
28.	9.4, दूसरा पैरा	3	की हो	से हो
28.	—,,—	4	जांएंगी" ।	जाएगा"।
28.	—,,—	7	से हो	से ही
30.	9.7	8	विचापण	विचारण
32.	पाद टिप्पण 1	1	धानी	चानी
34.	10.11	14	कियों	किया
38.	11.3	8	सामें	सामने

विषय-सूची

पृष्ठ

अध्याय 1—विषय-परिचायक 1

अध्याय 2—विभिन्न दृष्टिकोण 2

अध्याय 3—भारतीय विधि 4

अध्याय 4—इंगलैंड और स्काटलैंड की विधि 7

अध्याय 5—आस्ट्रेलिया में स्थिति 13

अध्याय 6—कनाडा में स्थिति 16

अध्याय 7—अमेरिका में स्थिति 19

अध्याय 8—जमायिका का एक मामला 27

अध्याय 9—कार्य संचालन पत्र के बारे में प्राप्त आलोचनाएं . . . 27

अध्याय 10—पक्ष और विपक्ष में तर्क 30

अध्याय 11—विचाराधीन विवाधक और सिफारिशें 37

परिशिष्ट

परिशिष्ट—अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य की कुछ उदाहरणात्मक परिस्थितियां

अध्याय 1

विषय परिचायक

विषय विस्तार।

1.1. इस रिपोर्ट में साक्ष्य-विधि के एक विशिष्ट क्षेत्र की चर्चा करने का विचार है, अर्थात् न्यायालय को आपराधिक मामले में अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य को अपवर्णित करने अर्थात् उसे छोड़ देने या उस पर विचार न करने का विवेकाधिकार किस हद तक होना चाहिए? इस वाक्य में मोटे तौर पर जो प्रश्न उठाया गया है उस पर भारत के न्यायिक विनिश्चयों में उतनी गंभीरता से ध्यान नहीं दिया गया है जितना कि कुछ अन्य देशों में फिर भी ऐसे कारणों से, जिनका वर्णन बाद में किया जाएगा, इस प्रश्न पर विस्तार से विचार करना आवश्यक है।[1]

परम्परागत दृष्टिकोण।

1.2. सामान्य रूप में कह सकते हैं कि भारतीय न्यायालयों का परम्परागत दृष्टिकोण इस आशय का रहा है कि ऐसा कोई कानूनी या संवैधानिक उपबंध नहीं हैं जिसमें किसी विशेष प्रकार के साक्ष्य को ग्रहण न करने का उपबंध हो और यह तथ्य कि साक्ष्य अवैध रूप से प्राप्त किया गया था दांडिक विचारण में ऐसे साक्ष्य का ग्रहण किया जाना कोई महत्व नहीं रखता। लार्ड स्कारमेन ने[2] इंगलैंड के "सैंग" के मामले में टिप्पणी की थी कि "न्यायाधीश अभियोजन लाने या छोड़ देने के लिए जिम्मेदार नहीं हैं" और "न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की बहुत ही कम परिस्थितियों को छोड़कर, जो कि इस मामले में नहीं हैं, न्यायाधीश का सरोकार केवल विचारण का संचालन करने से है।"[3]

भारत में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

अध्ययन की आवश्यकता

1.3. परम्परागत भारतीय दृष्टिकोण (जैसा कि ऊपर बताया गया) यथार्थ में विधि सम्मत दृष्टिकोण प्रकट करता है। किन्तु इस विषय पर कुछ नए ढंग से विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

इसके महत्व को ध्यान में रखते हुए विधि आयोग ने स्वयं इस पर विचार करने का निश्चय किया है क्योंकि यह प्रश्न और इसी प्रकार के अन्य विवाद हाल में ही मानवाधिकारों की दृढता से बढ़ती हुई मांग को देखते हुए महत्वपूर्ण हो गए हैं या उनके महत्वपूर्ण हो जाने की संभावना है। भारतीय परिप्रेक्ष में विशेषकर संविधान के अनुच्छेद 21 के बढ़ते हुए विस्तार की दृष्टि से (जैसा कि इस समय इस अनुच्छेद का निर्वचन किया गया है) ऐसी संभावना है कि निकट भविष्य में यह प्रश्न इस जैसी जांच में अत्यंत व्यावहारिक महत्व का हो जाएगा। ऐसा कहने का यह मतलब नहीं है कि वर्तमान जांच का उद्देश्य विधि में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन का सुझाव अनावश्यक रूप से देना है। इस जांच का उद्देश्य मुख्य रूप से इस विषय पर विचार विमर्श करने की प्रेरणा देना है, अनेक अंतर्ग्रस्त विवादकों को सुलझाना है, विवाद के विविध रूपों को ठोस रूप से निश्चित करना है और ऊपर वर्णित सिद्धांत तथा विकास को दृष्टि में रखते हुए भारत में वर्तमान स्थिति का साधारणतया परीक्षण करता है। यदि ऐसी जांच के फलस्वरूप विधि में सुधार करने की आवश्यकता प्रकट होती है तो निःसंदेह समुचित सुधार के लिए सुझाव दिए जाएंगे।

---

1. आगे पैरा 1.3।
2. आगे का अध्याय 3।
3. आर० बनाम सैंग 1979/3 डब्ल्यू० एल० आर० 263, 288—तुलना कीजिए आर० बनाम सैंग 1979/2 डब्ल्यू० एल० आर० 439, 458 सीए।

अध्ययन का तरीका और निकाले जाने वाले निकर्मों की अस्थायी स्थिति।

1.4. इस विवाद में संवैधानिक दृष्टिकोण को जो अधिक प्रधानता दी जाने लगी है और मानवाधिकारों के दृष्टिकोण से इस विषय का जो महत्व है उसे देखते हुए वर्तमान जांच के प्रयोजन के लिए इसके विभिन्न सैद्धांतिक और व्यावहारिक पहलुओं पर विचार करना वांछनीय होगा। अन्य देशों में जो विकास विगत काल में और अभी हाल में हुए हैं उन पर विचार करना हितकर है। इसके साथ ही यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि कुछ अन्य देशों में यह विषय, जिस पर हम विचार विमर्श कर रहे हैं, अस्थिर स्थिति में प्रतीत होता है[1] और उन देशों में यदि कोई व्यक्ति विधि का निर्धारण करता है तो उस निर्धारण को अस्थायी समझना चाहिए और यह आवश्यक नहीं है कि वह निर्धारण आजकल की स्थिति को इस प्रश्न के मुद्दों की सभी बारीकियों के साथ परिलक्षित करता हो। तथ्य तो यह है कि क्योंकि यह विषय स्वतः मानव मूल्यों से अभिन्न रूप में जुड़ा हुआ है इसलिए वर्तमान जांच के फलस्वरूप जो भी निष्कर्ष अंततः निकाले जाएं उन्हें केवल कुछ सीमित समय के लिए बाध्यता रखने वाले मानने चाहिए और उचित अंतराल के बाद उनका नया परीक्षण किए जाना नहीं छोड़ देना चाहिए।

आयोग द्वारा परिचालित कार्यसंचालन पत्र।

1.5. यहां यह बता दिया जाए कि इस विषय पर जानकार वर्ग की राय जानने के लिए आयोग ने एक कार्य संचालन-पत्र परिचालित किया है जिसमें इस रिपोर्ट में आगे के अध्यायों में सम्मिलित अधिकांश सामग्री का विवरण दिया गया है।[2] कार्य संचालन पत्र के अंत में अनेक विवाधकों को विचार किए जाने के लिए उठाया गया है। हम उन विवाधकों को[3] इस रिपोर्ट के अंतिम अध्याय में दे रहे हैं। यह कार्य संचालन पत्र सचिव, विधायी विभाग, विधि मंत्रालय को और राज्य सरकारों, उच्च न्यायालयों, विधिज्ञ संघों (बार एसोसिएशन्स) तथा अन्य हितबद्ध व्यक्तियों और निकायों को भेजा गया था। इस कार्य संचालन पत्र के बारे में प्राप्त आलोचनाओं का संक्षेपीकरण इस रिपोर्ट के पश्चात्-वर्ती अध्याय में किया जाएगा।[4]

अध्याय 2

विभिन्न दृष्टिकोण

अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य के बारे में विभिन्न दृष्टिकोण।

2.1. मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि कामन ला के संसार में इस प्रश्न पर कि अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य पर कैसा विधिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है उसके चार विभिन्न प्रतिमान (माडल)[5] प्रकट होते हैं। फिर भी ऐसे साक्ष्य उस अपराध के विचारण में उपयोग किए जाने के लिए उपलब्ध होते रहते हैं जिसके अन्वेषण में वे इस प्रकार से एकत्र किए जाते हैं। विभिन्न प्रतिमानों (माडलों) द्वारा अपनाए गए दृष्टि-कोणों से यह परिलक्षित होता है कि साक्ष्य एकत्र करने के लिए अपनाए जाने वाले तरीकों और साक्ष्य एकत्र करने के औचित्य के कुछ साधनों का पालन किए जाने के बारे में विधिक निर्बन्धनों को लागू किए जाने के लिए विधि कितनी गहरी रुचि रखती है।

प्रसंगवश वर्तमान विचार विमर्श में "अवैध" और "अनुचित" जैसी अलग-अलग अभिव्यक्तियों (और इनके क्रियाविशेषण प्रतिरूपों) के प्रयोग का यह अर्थ निकालना आवश्यक नहीं है कि इन दोनों अभिव्यक्तियों से हमेशा अलग-अलग या भिन्न-भिन्न परिस्थितियां प्रकट होती हैं और न तो इन दोनों अभिव्यक्तियों के प्रयोग से यह अर्थ निकलता है कि प्रत्येक देश, जो अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के बारे में विशिष्ट दृष्टिकोण अपनाता है वह आवश्यक रूप से वही दृष्टिकोण अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य के बारे में

---

1. देखिए सैंग हवांग यू का "डिस्क्रिशन टू एक्सक्लूड इलीगली एंड इम्प्रापरली आबटेंड एविडेन्स" 1961 मेलबोर्न यूनिवर्सिटी ला रिव्यू 31।
2. अप्रैल, 1983 में परिचालित कार्य संचालन-पत्र।
3. आगे अध्याय 11।
4. आगे अध्याय 9।
5. आगे पैरा 2.3।

भी अपनाता है और इसके विपरीत भी निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। इस विचार विमर्श में इन दोनों अभिव्यक्तियों का प्रयोग सुविधा की दृष्टि से किया गया है। यदि कोई व्यक्ति इनके विस्तार पर बारीकी से विचार करता है तो उसे पता चलेगा कि न्यायालय इस समस्या पर विचार करते समय अपने विचार हमेशा प्रकट नहीं करते कि किसी विशिष्ट मामले के विनिश्चय पर अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के तथ्य का या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य के तथ्य का या दोनों तथ्यों का प्रभाव पड़ा या नहीं।

संवैधानिक विस्तार।

2.2. दूसरा प्रारंभिक स्पष्टीकरण भी ठीक प्रतीत होता है। जहां किसी विशिष्ट देश में लोक अधिकारियों के आचरण को विनियमित करने वाले नियम को संवैधानिक आदेश का दर्जा मिल गया है वहां यह विवाद नए रूप धारण कर सकता है और यह अधिक जटिल रूप में प्रकट हो सकता है। इसलिए आगे के विचार विमर्श में जहां इस स्थिति का कथन साधारण विधि के अधीन वाली स्थिति के रूप में किया गया है वहां इस कथन को इस शर्त के अधीन समझना चाहिए कि जहां पर शिकायत की गई अवैधता या अनौचित्य ने संवैधानिक प्रश्न का दर्जा प्राप्त कर लिया है वहां इस विशिष्ट मुद्दे पर उद्धृत निर्णयन विधि में इस प्रश्न को विनिर्दिष्ट रूप से नहीं उठाया गया है।

देशों के प्रवर्ग—पहला प्रवर्ग।

2.3. जैसा कि ऊपर कहा गया है, अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य के बारे में विभिन्न देशों में प्रचलित विभिन्न दृष्टिकोण मोटे तौर पर चार प्रवर्गों में आते हैं। पहला तो वह है जहां कुछ देशों में कड़ाई से यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया जाता है (इसके अंतर्गत भारत भी है)[1] जिनमें साक्ष्य के संग्रह किए जाने में प्रयोग की कई अवैधता या अनौचित्य से (इस विषय पर विनिर्दिष्ट कानूनी या संवैधानिक उपबंध के अभाव में) इस प्रकार प्राप्त साक्ष्य वैध रूप में अग्राह्य नहीं हो जाता, भले ही ऐसी अवैधता या अनौचित्य का असर पड़ने की संभावना है। पूर्ववर्ती वाक्य में भारतीय स्थिति के बारे में जो कथन किया गया है उसे निःसंदेह इस शर्त के अधीन समझना चाहिए कि संविधान के अनुच्छेद 21 के बढ़ते हुए विस्तार और उस अनुच्छेद में आने वाले "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" शब्दों का जो व्यापक निर्वचन किया जा रहा है उनसे इस संबंध में स्थिति बदल जाने की संभावना है। अभी तक जो अभिनिश्चित किया जा सकता है वह यह है कि भारत में न्यायालयों ने इस प्रश्न पर कि क्या किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में साक्ष्य संग्रह करने के लिए अवैध या अनुचित तरीकों का प्रयोग अनुच्छेद 21 में अधिकथित "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" की अपेक्षाओं का उल्लंघन है, प्रत्यक्ष और समुचित रूप से विचार नहीं किया है।

दूसरा प्रवर्ग।

2.4. वर्तमान प्रयोजन के लिए ऊपर वर्णित दूसरे वर्ग[2] में ऐसे देश आते हैं[3] जहां साक्ष्य संग्रह करने में अवैध या अनुचित तरीकों के प्रयोग को कुछ विस्तार तक सुसंगत माना जाता है, अर्थात् विचारण के प्रक्रम पर न्यायालय अपने विवेकाधिकार से ऐसे साक्ष्य को इन्कार कर देने में अपने को न्यायोचित कार्य करने वाला समझ सकता है।

तीसरा प्रवर्ग।

2.5. ऊपर वर्णित तीसरे प्रवर्ग में ऐसी परिस्थितियां आती हैं जिनमें विधि विनिर्दिष्ट कानूनी उपबंध द्वारा ऐसे विशेष प्रकार के साक्ष्य को अपवर्जित कर देती है (विचार किए जाने के लिए ग्रहण नहीं करने देती) जो लोक पदाधिकारियों के लिए अलग से (किन्तु संबंधित) नियम में विहित आचरण के किसी मूल सिद्धांत या तरीके का उल्लंघन करके प्राप्त किया गया है।[4]

---

1. आगे अध्याय 3 जिसमें भारतीय विधि पर विचार विमर्श किया गया है।
2. पिछला पैरा 2.3।
3. उदाहरण के लिए, स्काटलैंड और आस्ट्रेलिया में विधि, आगे अध्याय 4.5।
4. उदाहरण के लिए—भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 24।

चौथा प्रवर्ग ।

2.6. ऊपर वर्णित चौथे प्रवर्ग में ऐसे देश आते हैं जहां संवैधानिक गारंटी या संवैधानिक गारंटी के न्यायिक अर्थान्वयन ऐसे विचारण में, जिसमें साक्ष्य ऐसी संवैधानिक गारंटी के उल्लंघन में प्राप्त किया गया है, कतिपय साक्ष्य को अपवर्जित करता है । इस प्रवर्ग का सबसे सुविदित उदाहरण अमेरिका है।[1] उस देश की निर्णायज विधि में, जो चौथे संशोधन (अनुचित तलाशी और तामील किए जाने के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है) और चौदहवें संशोधन (सम्यक् प्रक्रिया का खंड) के बारे में है, ऐसी परिस्थितियों के उदाहरण विशेष रूप से मिलते हैं जो इस विवेचनाधीन प्रवर्ग के अंतर्गत आती हैं।

भौगोलिक संक्षिप्त विवरण ।

2.7. चुने गए क्षेत्रों में स्थिति के अत्यंत संक्षिप्त विवरण के रूप में यह कहा जा सकता है कि अमेरिका में दांडिक कार्यवाहियों में साक्ष्य उपलब्ध करने के अवैध कार्यकलापों को रोकने की दृष्टि से भयभीत करने के वास्ते ऐसा साक्ष्य उस दशा में अग्राह्य है जब उसे विधि प्रवर्तक अधिकारियों ने अवैध रूप से प्राप्त किया है या जब अवैध कार्यों के किए जाने से ऐसे साक्ष्य का पता चला है। इसके विपरीत कनाडा में न्यायालय सत्य की जांच को असंबंधित नीति की बातों से प्रभावित होने देने में अपनी अधिक अनिच्छा प्रकट करते हैं। स्काटलैंड और आस्ट्रेलिया में विवेकाधिकार को मान्यता दी जाती है और इसका अक्सर प्रयोग किया जाता है। इस संबंध में इंगलैंड में स्थिति अस्थिर है।

भारत में विवाद्यक तथ्य के बारे में साक्ष्य की विधिक प्रासंगिकता वर्तमान विधि के अधीन एकमात्र उपयुक्त विचारणीय बात है। किस ढंग से साक्ष्य प्राप्त किया गया था इसे आनुषंगिक विवाद्यक ग्रहण किए जाने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, भले ही न्यायालय इस बात को उस पक्षकार की विश्वसनीयता पर जो ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करता है, कुछ असर डालने वाली बात मान सकता है।[2]

अध्याय 3

भारतीय विधि

सामान्य दृष्टिकोण

3.1. भारतीय विधिक पद्धति के सामान्य दृष्टिकोण के अनुसार साक्ष्य एकत्र करने या उपाप्त करने में अवैधता या अनौचित्य स्वतः इस प्रकार उपाप्त साक्ष्य को अग्राह्य नहीं बना देता भले ही कुछ मामलों में इसका असर पड़ सकता है। भारत में न्यायालय विधि के ऐसे उल्लंघनों को साक्ष्य की ग्राह्यता के लिए सामान्यतया सुसंगत नहीं मानते।

3.2. यह दृष्टिकोण कुछ हद तक इस तथ्य के कारण हो सकता है कि साक्ष्य की भारतीय विधि लगभग पूरी तरह संहिताबद्ध है जिसका सुसंगत और असंगत तथ्यों में विस्तार से वर्गीकरण विनिर्दिष्ट रूप से कर दिया गया है और कानून द्वारा इसी प्रकार के अन्य विभेद अधिकथित कर दिए गए हैं। संभवतः भारतीय साक्ष्य अधिनियम समस्त कामन-वेल्थ में साक्ष्य की सबसे पहली व्यापक संहिता है (1872)। जिस समय तक अन्यत्र न्यायालय को लोक नीति के आधार पर साक्ष्य अपवर्जित करने (ग्रहण न करने) का विवेकाधिकार होने का विकास हुआ था तब तक उक्त अधिनियम भारतीय न्यायपालिका के प्रशिक्षण और विकास के लिए दृढ़ता से लागू हो चुका था। कामन ला के सिद्धांतों को भारतीय विधिक पद्धति की साक्ष्य विधि की संहिताबद्ध प्रणाली पर अधिरोपित करना बहुत आसान नहीं था। न्यायालयों को साक्ष्य ग्रहण करने या न ग्रहण करने के प्रश्नों का विनिश्चय करने में केवल साक्ष्य अधिनियम की स्कीम और पाठ का अनुसरण करने के सिवाय और कोई चारा नहीं था और वे साक्ष्य की ग्राह्यता के प्रश्नों का अवधारण करने में उक्त अधिनियम की चहारदीवारी से बाहर जाने के लिए इच्छुक नहीं थे।

---

1. आगे अध्याय 6 ।
2. और भी देखिए आगे अध्याय 3 ।

संहिता बद्धकरण।

3.3. भारत की विधिक पद्धति की एक दूसरी विशेषता भी है जो विचार-विमर्श के अधीन विषय से सुसंगत है। जिस समय साक्ष्य अधिनियम का अधिनियमन हो रहा था उस समय तक भारत में मूल दांडिक विधि और दांडिक प्रक्रिया की विधि भी संहिताबद्ध रूप में बन चुकी थी। इस तरह से ऐसा प्रतीत होता है कि समग्र रूप में इस स्थिति के कारण यह निहित उपधारणा बन गई थी कि इस क्षेत्र में किसी व्यक्ति को केवल परिनियमित विधि का ही मार्ग अपनाना था। इस दृष्टिकोण को प्रिवी कौंसिल की इस आशय की उद्घोषणा से और भी सुदृढ़ता प्राप्त हुई कि "संहिता का मूल तत्व यह है कि संहिता में जितने भी विषयों की चर्चा की गई है वे सभी माने में संपूर्ण और निःशेष हैं।" संहिताओं के निर्वचन के संबंध में प्रिवी कौंसिल का यह सामान्य रूप से कथन एक शास्त्रीय पाठ बन गया जिसे लगभग ऐसे प्रत्येक अवसर पर उद्धृत किया जाने लगा जब न्यायालयों में न्यायाधीश को किसी विशेष विषय के संबंध में विधि का विकास करने के लिए मार्गदर्शन कराने के लिए संहिता से बाहर जाने पर राजी करने की कोशिश की जाती थी। यही दृष्टिकोण साक्ष्य अधिनियम के निर्वचन के लिए भी प्रचलित था।[1] हम संक्षेप में कह सकते हैं कि साक्ष्य विधि जिस संहिताबद्ध रूप में अधिनियमित है उससे भिन्न रूप में और किसी स्रोत से प्रेरणा पाना बन्द हो गया।

संस्वीकृतियां।

3.4. हम भारतीय विधिक पद्धति की उपर्युक्त विशेषता के अतिरिक्त एक दूसरी विशेषता का भी उल्लेख कर सकते हैं जिसके प्रति वर्तमान प्रसंग में समुचित रूप से निर्देश किया जा सकता है। अन्य देशों में आपराधिक मामलों में संस्वीकृतियों की ग्राह्यता का विषय अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित करने के लिए न्यायिक विवेकाधिकार के प्रयोग का अच्छा आधार प्रदान करता है। किन्तु भारत में इस विषय की चर्चा साक्ष्य अधिनियम की धाराओं की श्रृंखला में विस्तार से की गई है।[2] इस तरह से इस विशेष विषय को विवेकाधिकार के क्षेत्र से हटा दिया गया है और न्यायिक सृजनात्मकता को कम कर दिया गया है। इसलिए भारत में यह प्रश्न कि क्या किसी विशेष संस्वीकृति को अभिलेख (रिकार्ड) में ग्राह्य किया जा सकता है या नहीं केवल परिनियमित विधि और उसके निर्वचन के आधार पर अवधारित किया जा सकता है, बजाय इसके कि उसका अवधारण किसी संहिताबद्ध न की गई विधि से उत्पन्न होने वाले सिद्धांतों को ढूंढ करके किया जाए। विधि का यह क्षेत्र "न्याय समता और शुद्ध अंतः करण" से लगभग खाली रहा है।

यहां पर संस्वीकृतियों से संबंधित साक्ष्य अधिनियम की धाराओं का सारांश देना ठीक नहीं है।[2] विधि आयोग को विगत समय में साक्ष्य अधिनियम के बारे में अपनी व्यापक रिपोर्ट में इन उपबंधों पर विस्तार से विचार करने का अवसर मिल चुका है।[3] इस समय जो बात कही जा रही है वह यह है कि यदि भारत में साक्ष्य विधि संहिताबद्ध नहीं की गई होती, तो ऐसे विषयों की चर्चा, जिनमें न्यायालय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करके कतिपय साक्ष्य को अपवर्जित कर सकते थे, अधिक सरल ढंग से की जा सकती थी लेकिन भारत में न्यायालय ऐसे विषयों पर जिनमें संस्वीकृतियां महत्वपूर्ण उदाहरण हैं, विचार करने से इस कारण पहले से ही रोक लिए गए हैं कि विशिष्ट विषयों पर कानूनी उपबंध अधिनियमित हैं।

अवैध तलाशियां।

3.5. यह भी संभव है कि जब एक बार यह "कानून से मान्य दृष्टिकोण" ऐसी संस्वीकृतियों के विषय में, जिन्हें विभिन्न परिस्थितियों में अभिलिखित किए जाने की ग्राह्यता के संबंध में विनिर्दिष्ट उपबंध विद्यमान हैं, स्थापित हो गया तब आगे चलकर न्यायालयों की यह आदत बन गई कि वे अन्य विषयों के संबंध में भी यही दृष्टिकोण अपनाने लगे।

---

1. तुलना कीजिए लेखराज बनाम महिपाल (1878) आई० एल० आर० 744, 754 (प्रिवी कौंसिल)।

2. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 24 से लेकर धारा 30 तक।

3. विधि आयोग की उनहत्तरवीं रिपोर्ट (भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872) जो मई, 1977 में भेजी गई थी।

इसके परिणामस्वरूप अन्य प्रकार के साक्ष्य के संबंध में भी न्यायालयों ने यही दृष्टिकोण अपनाया भले ही किसी विशेष प्रकार के साक्ष्य को ग्रहण करने या ग्रहण न करने के संबंध में विनिर्दिष्ट कानूनी उपबंध नहीं थे। इसका सबसे अधिक सुविदित उदाहरण भारत में उस न्यायिक दृष्टिकोण से मिलता है जो तलाशी द्वारा उपाप्त साक्ष्य के संबंध में अपनाया जाता है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में अपराध के अन्वेषण के प्रयोजनों के लिए पुलिस द्वारा ली जाने वाली तलाशी के तरीके के बारे में विस्तृत उपबंध अधिकथित हैं।[1] इन उपबंधों में अनेक रक्षोपाय सम्मिलित हैं जिनका ऐसी तलाशियां लेते समय पुलिस द्वारा पालन किया जाना अपेक्षित है। जब सुसंगत कानूनी अपेक्षाओं के उल्लंघन में ली गई तलाशी में एकत्र सामग्री को साक्ष्य में ग्रहण किए जाने के प्रश्न उठे। (विशेषकर इस कानूनी अपेक्षा की कि तलाशी स्वतंत्र साक्षियों की उपस्थिति में ली जानी चाहिए।)[2] तब सामान्य रूप से न्यायालयों ने विधिसम्मत दृष्टिकोण अपनाना प्रारंभ कर दिया। पूर्व निर्णयों की प्रवृत्ति के अनुसार इस प्रकार से प्राप्त साक्ष्य स्वतः अग्राह्य नहीं है[3] और विचारण करने वाले न्यायाधीश को ऐसा कोई मान्यताप्राप्त विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है कि वह ऐसी तलाशी में, जो विधि के अनुसार नहीं ली गई है, प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित कर दे।

कानूनी रक्षोपायों का पालन न किए जाने से पुलिस की भर्त्सना हो सकती है और साक्ष्य पर भी असर[4] पड़ सकता है। किन्तु ऐसे साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की वैधता पर तलाशी में त्रुटि होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता[5]।

उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय।

3.6. उच्चतम न्यायालय द्वारा 1973 में किए गए एक विनिश्चय को प्रायः ऐसा माना जाता है कि उसने भारत में न्यायालयों के इस विवेकाधिकार को मान्यता दी गई है कि वे अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित कर सकते हैं। किन्तु वास्तव में उच्चतम न्यायालय ने उस मामले में साक्ष्य को ग्राह्य अभिनिर्धारित किया था और इस दलील को स्वीकार नहीं किया था कि साक्ष्य एकत्र करने में अवैधता का असर उस साक्ष्य की ग्राह्यता पर पड़ता है। साक्ष्य में ग्राह्यता के प्रश्न का संबंध टेलीफोन पर हुई बातचीत के टेप रिकार्ड से था। उसमें रिश्वत लेने का आरोप था और अभियुक्त बम्बई का मृत्यु समीक्षक (कारोनर) था जिसने बम्बई के एक डाक्टर से बीस हजार रुपए की रिश्वत मांगी थी। डाक्टर को उपेक्षा का दोषी घोषित न किए जाने के लिए कारोनर की कीमत के रूप में रिश्वत की मांग की गई थी। जो बातचीत हुई थी वह डाक्टर और अभियुक्त के बीच हुई थी। भ्रष्टाचार निरोधी पुलिस ने बातचीत को रेकार्ड किया था जिसको डाक्टर ने इस प्रयोजन के लिए बुला लिया था। डाक्टर के यहां टेलीफोन के साथ टेप रेकार्डर जोड़ दिया गया था और डाक्टर तथा अभियुक्त के बीच जो बातचीत हुई थी वह टेलीफोन से जुड़े हुए टेप रेकार्डर पर रेकार्ड कर ली गई थी। उच्चतम न्यायालय ने इस तर्क को नामंजूर करते हुए कि टेलीफोन की बातचीत में इस प्रकार से हस्तक्षेप करना अवैध था यह अभिनिर्धारित किया कि यदि कोई अवैधता थी भी तो उससे प्रश्नगत साक्ष्य अग्राह्य

---

1. दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 100।
2. दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 100 (4)।
3. (क) बलमाली बनाम एम्परर आई० एल० आर० 1939 I कलकत्ता 210।
   (ख) बलायुधन बनाम राज्य, ए० आई० आर० 1961 केरल 6 (पूर्ण पीठ)।
   (ग) काउ सेन बनाम पंजाब राज्य, ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 329 पैरा 9।
   (घ) गोविन्दन, ए० आई० आर० 1959 मद्रास 544, 548।
4. (क) मलाल खान बनाम एम्परर, ए०आई०आर० 1946 प्रिवी कौंसिल, 16, 19।
   (ख) विधि परामर्श (लीगल रिमेम्बरेन्सर) बनाम मेसताजुद्दीन आई०एल०आर० (1947) I कलकत्ता, 439।
5. सुन्दर सिंह बनाम राज्य, ए०आई०आर० 1956 (उच्चतम न्यायालय सुप्रीम कोर्ट) 411, 415।

नहीं हो गया। संविधान के अनुच्छेद 21 के आधार पर एक कमजोर प्रयास साक्ष्य को चुनौती देने का किया गया किन्तु वह चुनौती सफल नहीं हो सकी।

उच्चतम न्यायालय ने अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य से संबंधित विधिक स्थिति पर विचार विमर्श करने में और इस दृष्टिकोण के समर्थन में कि अवैधता से साक्ष्य की ग्राह्यता पर कोई असर नहीं पड़ता है अन्य बातों के साथ-साथ इस विषय पर इंगलिश विधि (इंगलैंड की विधि) के प्रति निर्देश किया। इसी प्रसंग में उच्चतम न्यायालय ने कुरमा के प्रिवी कौंसिल के सुप्रसिद्ध मामले में लार्ड गोडार्ड के निर्णय के प्रति निर्देश किया था। उस मामले में लार्ड गोडार्ड ने यह अभिनिर्धारित किया था कि साक्ष्य संग्रह करने में अवैध तरीके अपनाने का असर ऐसे साक्ष्य की ग्राह्यता पर नहीं पड़ता। लार्ड गोडार्ड ने विधि की अपनी ओर से व्याख्या करते हुए अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित करने के न्यायिक विवेकाधिकार की विद्यमानता के बारे में उस दशा में कुछ ऐसी उक्ति अंत में की थी कि जब कि ऐसे साक्ष्य को ग्रहण करने से जिस पक्षकार के विरुद्ध ऐसा साक्ष्य दिया गया है उस पर प्रतिकूल असर पड़ने की संभावना हो तो ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने इंगलिश विधि की चर्चा करते समय स्वाभाविक रूप से लार्ड गोडार्ड के निर्णय के प्रति निर्देश किया और इसी प्रसंग में उच्चतम न्यायालय ने उक्त सिद्धांत का संक्षेप में उल्लेख किया था जो लार्ड गोडार्ड द्वारा विधि की व्याख्या के अंत में कही गई बातों में था। किन्तु उच्चतम न्यायालय को इस प्रश्न पर कि क्या भारत में ऐसा कोई विवेकाधिकार प्राप्त है, विस्तार से विचार करने का अभी अवसर नहीं मिला। तथ्य तो यह है कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष जो मामला था उसका विनिश्चय ऐसे किसी विवेकाधिकार की विद्यमानता या अभाव के आधार पर नहीं किया गया था। अनुमानित अवैधता के होते हुए भी साक्ष्य ग्रहण किया गया था।

चाहे जो भी हो, यदि उच्चतम न्यायालय के निर्णय का अर्थान्वयन इस तरह किया जाता है जिससे यह प्रकट होता हो कि भारत में न्यायालयों को[1] ऐसा विवेकाधिकार प्राप्त है तो हमारे देश की परिनियमित विधि में ऐसे विवेकाधिकार को सम्मिलित करने की हमारी सिफारिश का स्वागत किया जाना चाहिए।

अध्याय 4

इंगलैंड और स्काटलैंड की विधि

I. इंगलैंड

कुरमा का प्रिवी कौंसिल में मामला—अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के सम्बन्ध में विवेकाधिकार।

4.1. अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के विषय में इंगलिश विधि का सर्वोत्कृष्ट कथन उस उक्ति से प्रकट होता है जो कुरमा[2] के प्रसिद्ध मामले में व्यक्त की गई है। उस मामले में वास्तव में विनिश्चय साक्ष्य ग्रहण करने के पक्ष में था और वह मामला इंगलैंड में नहीं उठा था लेकिन प्रिवी कौंसिल ने उसका विनिश्चय किया था। किन्तु प्रिवी कौंसिल की जुडिशल कमेटी ने उस मामले में जो विचार अभिव्यक्त किए थे उनका बहुत महत्व है और उन्हें इस विषय की छानबीन करने के लिए एक प्रारंभिक आधार के रूप में साधारणतया माना जाता है जिसका तात्पर्य इस विषय के इतिहास की गहराई में जाना नहीं है।

प्रिवी कौंसिल ने उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि अभियुक्त के शरीर की अवैध तलाशी ली जाने के फलस्वरूप उसके कब्जे में से गोलाबारूद पाए जाने का साक्ष्य ग्राह्य था। प्रिवी कौंसिल ने पूर्वतर इंगलिश विनिश्चयों में मान्यता दिए गए इस

1. आगे अध्याय 11।

2. कुरमा बनाम आर० (1955) 1 आल ई० आर० 236 (प्रि० कौं०)।

सिद्धांत का अनुसरण किया कि यदि साक्ष्य सुसंगत है तो वह वैध रूप से ग्राह्य है भले ही वह अनुचित रूप से प्राप्त किया गया हो। ऐसा साक्ष्य जिस व्यक्ति के विरुद्ध प्रस्तुत किया जाता है वह व्यक्ति ऐसा साक्ष्य प्राप्त करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध सिविल कार्रवाई कर सकता है और ऐसा साक्ष्य प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपने विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई या दाण्डिक कार्रवाई भी की जाने के लिए दायी हो सकता है। किन्तु विधि यह है कि "इसका कोई महत्व नहीं है कि आप किस प्रकार साक्ष्य प्राप्त करते हैं। यदि आप उसे चुरा भी लेते हैं तो भी वह साक्ष्य में ग्राह्य है[1]।"

किन्तु बोर्ड की राय व्यक्त करते हुए लार्ड गोडार्ड, एल० सी० जे० ने निम्नलिखित कहा :—

> "इसमें कोई सन्देह नहीं कि दाण्डिक मामले में न्यायाधीश को हमेशा यह विवेकाधिकार प्राप्त है कि यदि साक्ष्य की ग्राह्यता के कड़े नियमों को लागू करने का अभियुक्त के विरुद्ध अनुचित प्रभाव पड़ता है तो वह ऐसे साक्ष्य को अस्वीकार कर सकता है————————————————। उदाहरण के लिए, यदि प्रतिवादी से कोई साक्ष्य का कोई अंश चालाकी द्वारा प्राप्त कर लिया गया है तो इसमें कोई संदेह नहीं कि न्यायाधीश द्वारा उसे इन्कार किया जाना उचित होगा।[2]

आर० बनाम सैंग में विनिश्चय।

4.2. यहां यह उल्लेख कर दिया जाना चाहिए कि अभी हाल में ही आर० बनाम सैंग[3] के मामले में इंगलैंड में जो विनिश्चय हुआ है उसमें न्यायालय के विवेकाधिकार के बारे में जिन शब्दों में कथन किया गया है वह पूर्वतर मामलों में किए गए कथन से कुछ भिन्न जान पड़ता है। उस मामले में कोर्ट आफ अपील द्वारा जो सामान्य प्रश्न हाउस आफ लार्ड्स द्वारा विचार किए जाने के लिए उचित प्रमाणित किया गया था वह यह था कि "क्या विचारण करने वाले न्यायाधीश को ऐसा साक्ष्य नामंजूर करने का विवेकाधिकार प्राप्त है जो ग्रहण किए जाने वाले साक्ष्य से भिन्न साक्ष्य हो और ऐसी किन्हीं परिस्थितियों में दिया जाए जिनमें ऐसा साक्ष्य सुसंगत है और वह न्यूनतम संभाव्य महत्व से अधिक महत्व का है?" हाउस आफ लार्ड्स के पांच सदस्यों में से चार सदस्यों ने इस प्रश्न का निम्नलिखित उत्तर दिया था :—

> "(1) दाण्डिक विचारण में विचारण करने वाले न्यायाधीश को यह विवेकाधिकार हमेशा प्राप्त है कि यदि उसकी राय में ऐसे साक्ष्य का प्रतिकूल प्रभाव उस साक्ष्य की प्रमाणिकता से अधिक पड़ता है तो वह ऐसे साक्ष्य को ग्रहण करने से इन्कार कर सकता है।
>
> (2) स्वीकृतियों (एडमीशन्स) और संस्वीकृतियों (कन्फेशन्स) के बारे में छोड़कर और अपराध के लिए जाने के पश्चात् अभियुक्त से प्राप्त साक्ष्य के बारे में साधारणतया छोड़कर (विचारण न्यायाधीश) को यह विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है कि वह इस आधार पर किसी सुसंगत ग्राह्य साक्ष्य को ग्रहण करने से इन्कार कर सके कि वह साक्ष्य अनुचित या अवैध तरीकों से प्राप्त किया गया था। न्यायालय को इससे सरोकार नहीं है कि वह किस तरह से प्राप्त किया गया था।"

लार्ड सालमन ने (आर० बनाम सैंग के उपर्युक्त मामले में) विधि का निरूपण जिन शब्दों में किया गया था वह विधि के अन्य लार्डों से भिन्न थे। किन्तु लार्ड सालमन शेष हाउस के मत से असहमत नहीं थे।

---

1. आर० बनाम लीयम (1861) 8 काक्स सी०सी० 408, 501 (जस्टिस क्राफटन के अनुसार)।
2. कनाडा की विधि के लिए, देखिए क्लेटन हचिन्स, "डिस्क्रिशन आफ ए ट्रायल जज टू एक्सक्लूड अदरवाइज एडमिसिबिल एवीडेंस" (मई 1981 खण्ड 6, सं० 3 डलहौजी एल० जे० 690, 699.।
3. आर० बनाम सैंग (1979) डब्ल्यू० एल० आर० 263, 288 (एच०एल०)। 'रोसमरी पैटन्डन द्वारा' दि एक्सक्लूजन आफ अनफैरली आबटेंड, एवीडेन्स इन इंगलैंड (1980) 20 आई सी एल क्यू 666–686 पृष्ठों पर विश्लेषण देखिए।

4.3. ऊपर निर्दिष्ट आर० बनाम सैंग अभी हाल का मामला है और अभी ऐसी कोई आलोचना करनी संम्भव नहीं है कि इंगलैंड में अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के बारे में स्थिति को जिस रूप में पहले समझा जाता था उसे इस मामले ने परिवर्तित किया है या नहीं और यदि परिवर्तित किया है तो कहां तक किया है। किन्तु यहां इस बात का उल्लेख कर देना चाहिए कि अनुचित रूप से प्राप्त प्रतियों को न्यायालय में पेश की गई दस्तावेजों की चोरी रोकने के सीमित प्रयोजन के लिए ग्रहण लिए जाने से अपवर्जित किया जा सकता है।[1]

समान रूप से तथ्यों के साक्ष्य के बारे में विवेकाधिकार।

4.4. इंगलैंड में साक्ष्य के सम्बन्ध में विवेकाधिकार का प्रयोग एक दूसरे क्षेत्र में भी किया जाता है। यदि साक्ष्य प्रस्तुत करने का प्रयोजन केवल यह दर्शित करना है कि साक्ष्य देने वाले व्यक्ति द्वारा प्रश्नगत अवसर पर अवचार किया जाना सम्भाव्य था तो सामान्यतया इस बात का साक्ष्य नहीं दिया जा सकता है कि पक्षकार ने पूर्वतर अवसरों पर अवचार किया था। किन्तु यदि किसी अन्य कारण से ऐसा साक्ष्य सुसंगत है तो वह ग्राह्य है। किन्तु यदि किसी अन्य प्रयोजन के लिए साक्ष्य सुसंगत है तो वह किसी ऐसी बात के बारे में हो सकता है जो बहुत समय पहले हो चुकी हो[2] या वह सूक्ष्म प्रकृति का हो[3] तो जैसा कि क्रास का कथन है वैसा ही करना चाहिए। इस बारे में क्रास का कथन है कि[4] "ऐसे सभी मामलों में न्यायाधीश को यह विचार करना चाहिए कि जो साक्ष्य प्रस्तुत किया जाने वाला है वह उस प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए, जिसके लिए उसे प्रस्तुत करने की बात कही है पर्याप्त रूप से सारवान् है या नहीं जिससे उसे न्याय के हित में ग्रहण करना वांछनीय हो। यदि उसे प्रस्तुत करने के प्रयोजन का जहां तक सम्बन्ध है वह मामले की परिस्थितियों में केवल मामूली महत्व का है तो न्यायाधीश को उसे अपवर्जित कर देने का अधिकार प्राप्त होगा। ऐसा कहने का मतलब साक्ष्य के महत्व और उसकी ग्राह्यता में भ्रम पैदा करना नहीं है। महत्व और ग्राह्यता में अन्तर स्पष्ट है किन्तु ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें अभियुक्त के हित के गम्भीर रूप से प्रतिकूल साक्ष्य को ग्रहण करना अन्यायपूर्ण होगा भले ही उस साक्ष्य को तकनीकी रूप से ग्रहण करने के लिए कुछ सूक्ष्म आधार हों।

"तब इसका विनिश्चय न्यायाधीश के विवेकाधिकार और उसकी निष्पक्ष भावना पर छोड़ दिया जाना चाहिए।"[5]

संस्वीकृति के बारे में विवेकाधिकार।

4.5. इस क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट उदाहरण **नूर मोहम्मद बनाम आर०** का मामला है।[6] अभियुक्त को 'क' महिला की हत्या करने के लिए दोषसिद्ध किया गया था जिसके साथ वह रह रहा था। वह एक सोनार था और अपने कारबार के लिए वह साइनाइड वैध रूप से रखता था और 'क' महिला की मृत्यु साइनाइड की जहर से अवश्य हुई थी भले ही इस बात का कोई साक्ष्य नहीं था कि अभियुक्त ने जहर दिया था। अभियुक्त की उसके साथ बनती नहीं थी और दोनों के सम्बन्ध खराब थे और यह सुझाया गया था कि महिला ने आत्महत्या की थी। जुडिशल कमेटी ने यह निर्णय दिया कि दोषसिद्धि को अभिखंडित (मंसूख) कर देना चाहिए क्योंकि न्यायाधीश ने इस निष्कर्ष के समर्थन में साक्ष्य को दोषपूर्ण ढंग से ग्रहण कर लिया था कि नूर मोहम्मद (अभियुक्त) ने पहले भी अपनी पत्नी गूरिया की मृत्यु कारित कर दी थी जिसके साथ भी उसके सम्बन्ध खराब थे और ऐसा उसने

---

1. आई० टी० सी० फिल्मस **बनाम** वीडियो एक्सचेन्ज (1982) 2 आल० ई० आर० 241, 247।
2. आर० **बनाम** कोले (1941) एल० टी० 125।
3. आर० बनाम डाटी (1965) 1 आल० ई० आर० 540 (1965) डब्ल्यू० एल० आर० 331।
4. क्रास, एवीडेन्स (1973) पृष्ठ 90।
5. नूर मोहम्मद बनाम आर० (1949) ए०सी० 182, 192 (1949) 1 आल ई०आर० 365, 370, इसके **अलावा हेम्स बनाम डाइरेक्टर आफ पब्लिक प्रासिक्यूशन** (1982) एस० सी० 694, पृष्ठ 707 (1952) 1 आल० ई० आर० 1044, 1046 (लार्ड साइमन के अनुसार) भी देखिए।
6. नूर मोहम्मद बनाम आर० (1949) ए० सी० 182, (1949) 1 आल ई० आर० 365 (प्रिवी कौंसिल)।

आगे के दांतों के इलाज के बहाने चालाकी से उसे साइनाइड खाने के लिए कह कर दी थी। लार्ड ड्यू पार्क ने प्रिवी कौंसिल का निर्णय देते हुए इस साक्ष्य को अपने समक्ष मामले में तथ्यों के लिए उपयोग किए जाने के बारे में निम्नलिखित कहा था :—

'यदि इसकी जांच करने से यह दर्शित होता है कि यह केवल इस कारण प्रभावकारी दिखाने के लिए प्रकट होता है कि, जैसा कि लार्ड हर्शेल ने **माकिन के मामले**[1] में कहा था कि "अभियुक्त एक ऐसा व्यक्ति है जिसके बारे में यह सम्भावना है कि उसने अपने आपराधिक आचरण या चरित्र के कारण वह अपराध किया था जिसके लिए उसका विचारण किया जा रहा है" और यदि इस साक्ष्य का अन्यथा कोई वास्तविक महत्व नहीं है तो निश्चय ही यह साक्ष्य दोषपूर्ण ढंग से ग्रहण किया गया था।'

संस्वीकृतियां।

4.6. संस्वीकृतियों तीसरे प्रवर्ग में आती हैं जिनमें विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाता है। इंगलैंड में वैध रूप से ग्राह्य संस्वीकृतियों को अपवर्जित करने का न्यायाधीश का विवेकाधिकार भिन्न टाइप का होता है[2]। साक्ष्य के बहुत कम मुद्दे संस्वीकृति से अधिक प्रामाणिक होते हैं **परन्तु तब जब** कि संस्वीकृति ऐसी परिस्थितियों में न की गई हो जिनसे उसकी विश्वसनीयता के बारे में उचित सन्देह उत्पन्न होता हो। पूर्ववर्ती वाक्य में उल्लिखित यह परन्तुक इंगलिश विधि में साक्ष्य अपवर्जित करने के नियम का मूल आधार है जिसे निम्नलिखित शब्दों में सारगर्भित रूप से निरूपित किया गया है :—

> "किसी व्यक्ति के विरुद्ध साक्ष्य की ग्राह्यता के लिए मूल शर्त यह है और यह उस व्यक्ति द्वारा उस प्रश्न का, जिसे पुलिस ने उससे पूछा है, दिए गए उत्तर के बारे में और उस व्यक्ति द्वारा किए गए किसी कथन के बारे में भी समान रूप से लागू है कि वह इस अर्थ में स्वेच्छा से दिया गया हो कि उससे ऐसा कथन किसी प्राधिकारयुक्त व्यक्ति द्वारा प्रतिकूल प्रभाव डालने का भय उत्पन्न करके या लाभ की आशा देकर प्राप्त न किया गया हो या सता कर प्राप्त न किया गया हो।[3]

यह उन सिद्धान्तों में से एक है जिसका कथन इस विषय पर 1964 में न्यायाधीशों द्वारा प्रतिपादित नियमों में अभिव्यक्त रूप से किया गया है।[4] ये नियम पुलिस अधिकारियों के लिए ऐसे कथन लेने के सम्बन्ध में मार्गदर्शन करने से अधिक महत्व के नहीं हैं और इनमें पूछताछ के विभिन्न प्रक्रमों पर सावधानी बरतने का उपबन्ध किया गया है।

इस प्रस्तावना के अन्त में यह टिप्पणी है कि इन नियमों का पालन न किए जाने से उत्तरों और कथनों को पश्चात्वर्ती दाण्डिक कार्यवाहियों में साक्ष्य से अपवर्जित कर दिए जाने की सम्भावना है। इस तरह से न्यायाधीश को यह विवेकाधिकार प्राप्त है कि वह इन नियमों के भंग किए जाने की दशा में प्राप्त संस्वीकृति को अपवर्जित कर दे भले ही वह वैध रूप से साक्ष्य में ग्राह्य हो। तथ्य तो यह है प्रस्तावना के अन्त में जो टिप्पणी हैं उसमें केवल ऐसी संस्वीकृतियों को अपवर्जित करने के विवेकाधिकार की विद्यमान्यता को मान्यता दी गई है जो 1921 में प्रथम बार इन नियमों के निरूपित किए जाने से पहले उपर्युक्त परिभाषा के अन्तर्गत "स्वैच्छिक" हैं।[3]

---

1. **माकिन** बनाम ए० सी० **फार न्यु साउथ वेल्स** (1894) ए० सी० 57 (प्रि० कौं०)।
2. कास एवीडेन्स (1979) पृष्ठ 32। देखिए नोट कन्फेशन्स —रिसेन्ट डवेलपमेन्ट इन इंगलैंड (1980) खण्ड आई सी 29, आई० एल० एल० क्यू० 327, 345।
3. कास, एवीडेन्स (1979) पृष्ठ 32।
4. ये नियम (1964) में वर्णित हैं 1 आल ई० आर० 237 अब होम आफिस सरकूलर नं० 89 जजैस रूल्स एण्ड एडमिनिसट्रेटिव डाइरेक्शन्स टू दि पुलिस 1978 पृष्ठ 6 देखिए।

इंगलैंड में साक्ष्य के विषय में विवेकाधिकार—उनकी परिगणना ।

4.7. इस रिपोर्ट में सम्पूर्ण रूप से विवेकाधिकार की ऐसी सभी परिस्थितियों की चर्चा करके इससे बोझिल बनाना आवश्यक नहीं है जिन परिस्थितियों में इंगलैंड के न्यायालयों को सुसंगत साक्ष्य को किसी विशिष्ट आधार पर अपवर्जित करने का विवेकाधिकार प्राप्त होने की कल्पना की जाती है। अभी हाल में ही किए गए अध्ययन में[1] उन परिस्थितियों की परिगणना की गई हैं जिनमें विवेकाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है जो निम्नलिखित रूप में हैं[2] :—

(क) अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य ।

(ख) अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य ।

(ग) एक ही तरह के तथ्यों का साक्ष्य

(घ) अभियुक्त की चरित्र के सम्बन्ध में प्रतिपृच्छा ।

(ङ) संस्वीकृतियां ।

(च) अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा स्वीकारोक्तियां ।

(छ) विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला साक्ष्य ।[3]

II. स्काटलैंड

स्काटलैंड का (स्काटिश) दृष्टिकोण ।

4.8. अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के विषय में स्काटलैंड की विधि का दृष्टिकोण इंगलैंड में अनुसरण किए जाने वाले दृष्टिकोण से भिन्न है। विचारण करने वाले न्यायाधीश को केवल यही विवेकाधिकार नहीं प्रदान किया गया है कि वह अवैध से प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित कर दे बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय शुरू में इस सिद्धान्त के आधार पर कार्य करता है कि यह विवेकाधिकार अनियमित रूप से प्राप्त साक्ष्य की अपवर्जित करने की बजाय ग्रहण करने के लिए है। ऐसा कोई पक्का नियम नहीं है जो अनियमितता के कारण साक्ष्य को अग्राह्य बना देता है फिर भी जब ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है तो अनियमितता की उपधारणा का खंडन पुलिस उन परिस्थितियों को बता करके कर सकती हैं जिनमें अनियमितता माफ की जा सकती है और साक्ष्य का ग्रहण किया जाना न्यायोचित हो सकता है।[4] उपर्युक्त विवेकाधिकार के प्रयोग करने का निष्कर्ष निकालने में न्यायाधीश को लार्ड जस्टिस जनरल कूपर के निम्नलिखित कथन को ध्यान में रखना है[5] :—

> "विधि को ऐसे दो अत्यन्त महत्वपूर्ण हितों के बीच सामान्जस्य स्थापित करने का प्रयास अवश्य करना चाहिए जिनमें संघर्ष होने की सम्भावना है—(क) प्राधिकारियों द्वारा नागरिक की स्वतंत्रताओं पर अवैध या अनियमित आक्रमणों से नागरिक के हित का संरक्षण करना और (ख) राज्य के इस हित का ध्यान रखना कि अपराध किए जाने पर प्रभाव डालने वाले और न्याय प्रदान किए जाने के लिए आवश्यक साक्ष्य प्राप्त किए जाने में न्यायालयों द्वारा केवल औपचारिक या तकनीकी आधार पर रोक न लगाई जाए ।"

---

1. एम० एस० वेनबर्ग "जुडिशल डिसक्रिशन टू एक्सक्लूड रेलेवेन्ट एवीडेन्स (1975) 21 एम सी गिल ला जर्नल 1, 11 से 13 तक ।
2. अध्ययन में दिए गए पाद टिप्पणों को संक्षेप करने की दृष्टि से निकाल दिया गया है।
3. इस विषय पर देखिए आस्ट्रेलिया का विल्सन बनाम आर का मामला (1970) 44 ए०एल०जे०आर० 221, 222 और इंगलैंड का मामला आर बनाम लिस्ट (1968) 3 आल ई० आर० 710, 711 ।
4. जे०वी० डासन, "एक्सक्लूजन आफ अनलाफुली आबटेन्ड एवीडेन्स" (जुलाई, 1982) खण्ड 31 आई सी एल क्यू पृष्ठ 513, 537 ।
5. **लारी बनाम म्योर** (1950) स्काटिश ला टाइम्स 39, 40 ।

जिस मामले में से उपर्युक्त उद्धरण लिया गया है उसमें एक दुकानदार को, जो महिला थी, दूध सम्बन्धी आदेश के विपरीत ऐसी बोतलों में, जो उसकी बोतल नहीं थी, दूध का उपयोग करने के लिए दोषसिद्ध किया गया था। इस मामले में निर्णायक साक्ष्य दूध की बोतलों को इकट्ठा करने वाले एक संगठन के निरीक्षकों द्वारा दिया गया था जिन्होंने उस दुकानदारिन के परिसरों को अप्राधिकृत तलाशी लेने के परिणामस्वरूप उन बोतलों को पाया था। उसने दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर की कि ऐसा साक्ष्य अग्राह्य था क्योंकि वह अवैध तलाशी करके पाया गया था। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया यद्यपि साक्ष्य प्राप्त करने में अनियमितता के कारण साक्ष्य आवश्यक रूप से अग्राह्य नहीं हो जाता किन्तु इस मामले में दोषसिद्धि अवश्य अभिखण्डित (मंसूख) कर दी जानी चाहिए क्योंकि निरीक्षकों को यह जानकारी होनी चाहिए थी कि वे अपने प्राधिकार की सीमाओं से बाहर जा रहे हैं।

स्काटलैंड की विधि में अन्तर्निहित सिद्धान्त।

4.9. इस विषय में स्काटलैंड की विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि "साक्ष्य प्राप्त करने की रीति में अनियमितता से साक्ष्य आवश्यक रूप से अग्राह्य नहीं हो जाता (बल्कि) इस प्रकार की अनियमितताओं को "माफ" कर देना या छोड़ देना सदैव अपेक्षित है, चाहे आवश्यकताओं के विद्यमान होने या अनियमितता की सापेक्षिक तुच्छता या अन्य परिस्थितियों के कारण ऐसा करना पड़े।[1-2]

विवेकाधिकार के प्रयोग के उदाहरण।

4.10. स्काटलैंड में विवेकाधिकार के प्रयोग के उदाहरण अधिक संख्या में उपलब्ध हैं। संदिग्ध व्यक्ति को गिरफ्तार किए बिना और उसकी सहमति पहले प्राप्त किए बिना उसकी अंगुलियों के नाखून को रगड़कर प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित कर दिया जाता था।[3] क्योंकि पुलिस का ऐसा आचरण तकनीकी दृष्टि से हमला था। एक दूसरे मामले में ऐसी दस्तावेजों को, जो अवैध तलाशी करके पाई गई थी, साक्ष्य में अपवर्जित कर दिया गया था। लार्ड गुथरी ने यह लिखा कि इनको साक्ष्य में ग्रहण करने से "नागरिक को वह संरक्षण नहीं मिल पाएगा जो मजिस्ट्रेट के वारन्ट की अपेक्षाओं के अनुसार उसे मिलना चाहिए और इससे प्राधिकारियों को अनियमित तरीके से कार्य करने की सक्रिय प्रेरणा मिलेगी।[4]"

मार्गदर्शक बातें।

4.11. इस प्रकार से स्काटलैंड के न्यायाधीश अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य को सम्मिलित करने के बारे में मोटे तौर पर और आत्मपरक रूप में विवेक की अधिकारिता का प्रयोग करते हैं। किन्तु सन् 1950 से विवेकाधिकार के प्रयोग का मार्गदर्शन करने के लिए अनेक अनौपचारिक मापदण्ड बन गए हैं।

(i) जहां अवचार जानबूझ करके नहीं किया गया था वहां अनियमितता को आसानी से माफ किया जा सकता है। (उदाहरण के लिए) फेयरले के मामले में[5] साक्ष्य ग्रहण किया गया था क्योंकि "निरीक्षकों ने" अपनी शक्तियों के बारे में गलत विश्वास रखने और विधि की रक्षा करने के लिए लोक हित के प्रयास में सद्भावपूर्वक कार्य किया था।

(ii) यदि किसी दूसरे प्रयोजन के लिए अन्यथा रूप में ली गई वैध तलाशी में संयोगवश कोई साक्ष्य पाया जाता है तो ऐसा साक्ष्य ग्राह्य होगा।[6]

---

1. **मैकगोवर्न बनाम एच० एम० एडवोकेट** (1950) एस०एल०टी० 133, 135।
2. जे० बी० डाउसन, "एक्सक्लूजन आफ अनलाफुली आबटेन्ड एवीडेन्स" (जुलाई 1982) खण्ड 31 आई० सी० एल० क्यू 537, 538।
3. **मैकगोवर्न बनाम एच०एम० एडवोकेट** (1950) एस० एल० टी० 133, 145।
4. **एच० एम० एडवोकेट बनाम टर्नबुल** (1951) एस०एल०टी० 409, 411।
5. **फेयरले बनाम फिशमान्गर्स आफ लन्डन** (1951) एस० एल० टी० 54, 58।
6. **एच० एम० एडवोकेट बनाम हैपर** (1958) जे० सी० 39।

(iii) यदि साक्ष्य लोक पदाधिकारियों की बजाय, जो अपने वरिष्ठ अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी ठहराए जा सकते हैं, प्राइवेट व्यक्तियों द्वारा अनुचित रूप से प्राप्त किया गया है तो ऐसे साक्ष्य के ग्राह्य होने की कम सम्भावना है।[1]

(iv) जहां अत्यावश्यकता की परिस्थितियाँ नहीं है वहां साक्ष्य को अपवर्जित किया जा सकता है।[2]

(v) जहां कानून द्वारा[1] विनिर्दिष्ट प्रक्रिया विहित की गई है वहां उस प्रक्रिया का पालन करने में असफलता के कारण साक्ष्य को अपवर्जित किया जा सकता है।

(vi) जहां पुलिस विधिक अपेक्षाओं[3] का पालन आसानी से कर सकती थी वहां ऐसे न करने के कारण साक्ष्य को अपवर्जित किया जा सकता है।

(vii) जहां अवैधता गम्भीर है,[4] जैसे कि हमला वहां साक्ष्य को अपवर्जित किया जा सकता है।

किन्तु इसके विपरीत स्काटलैंड में जब अभियुक्त पर गम्भीर अपराध का आरोप लगाया जाता है या जब अपराध ऐसी किस्म का है कि उसका पता लगाना और नियमित तरीकों से अभियोजित करना बहुत मुश्किल है जैसे शराब सम्बन्धी अपराध या धमका कर धन वसूलने का अपराध तब साक्ष्य को अपवर्जित किए जाने की कम सम्भावना है।[5]

स्काटलैंड के दृष्टिकोण का बहुत बड़ा लाभ यह है इसमें पुलिस की कार्यवाहियों की निरन्तर न्यायिक जांच आवश्यक हो जाती है और अनुचित कार्य को न्यायसंगत सिद्ध करने का भार जिस पर होना चाहिए उस पर चला जाता है, अर्थात् पुलिस पर यह भार पड़ता है।

अध्याय 5

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में स्थिति

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में साधारण नियम।

5.1. मोटे तौर पर कह सकते हैं कि आस्ट्रेलिया में यह बात स्वीकार की जाती है कि न्यायाधीश को अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य को लोकहित में अपवर्जित करने की शक्ति प्राप्त है।[6-7]

न्यूजीलैंड में भी यही स्थिति प्रकट होती है।[8]

---

1. **सारो बनाम स्थौर** (1950) एस० एल० टी० 37।
2. **है बनाम एच० एम० एडवोकेट** (1968) एस० एल० टी० 334।
3. **मैकगोवर्न बनाम एच० एम० एडवोकेट** (1950) एस० एल० टी० 133।
4. **एच० एम० एडवोकेट बनाम टर्नबुल** (1951) एस० एल० टी० 409।
5. **होप्स बनाम एच० एम० एडवोकेट** (1960) जे० सी० 104।
6. गिफोर्ड और गिफार्ड, अवर लीगल सिस्टम (1981) पृष्ठ 80।
7. सन् 1950 तक के मामलों के लिए देखिए। इलियट जानसन – दि इकसक्लूजनरी रूल एण्ड कन्ट्रोल्स ओवर दि एबूज आफ पब्लिक पावर (1980) – 54, आस्ट्रे० एल० जे० 466।
8. **आर० बनाम ली** (1972) 1 एम० ई० एल० आर० 486, 487 (सुप्रीम कोर्ट आफ एन० ई० जस्टिस निलवेल के अनुसार) गिफोर्ड एण्ड गिफार्ड द्वारा उद्धृत अवर लीगल सिस्टम (1981) पृष्ठ 80।

श्वास परीक्षण के बारे में आस्ट्रेलिया का एक मामला।

5.2. अभी हाल में ही आस्ट्रेलिया में एक दिलचस्प मामला[1] उठा था जिसमें अभियुक्त के श्वास नमूने को इस प्रयोजन के लिए लिया गया था जिससे इस बात की जांच की जा सके कि कितनी मात्रा में एल्कोहल (मद्यसार) अवैध रूप से प्राप्त किया गया था। इसमें अवैधता यह थी कि पुलिस ने सड़क के किनारे अभियुक्त अपना प्रारम्भिक परीक्षण कराने की मांग नहीं की थी जिसे किया जाना कानून द्वारा विहित है। प्रारम्भ में जिस वैतनिक मजिस्ट्रेट ने मामले की सुनवाई की थी उसने साक्ष्य को इस आधार पर अग्राह्य अभिनिर्धारित किया कि यह साक्ष्य अवैध रूप से प्राप्त किया गया था[2] और इसके फलस्वरूप उसने अलकोहल के असर में गाड़ी चलाने के आरोप को खारिज कर दिया। किन्तु विनिश्चय का पुनरीक्षण किए जाने का आदेश के अनुसरण में मजिस्ट्रेट ने मामले की फिर से सुनवाई की। उसने इस बात को मान्यता देते हुए कि केवल अवैधता के कारण साक्ष्य अग्राह्य नहीं हो जाता फिर से इस साक्ष्य को अपवर्जित कर दिया और इस बार उसने ऐसा इस आधार पर अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करके किया कि यह साक्ष्य अनुचित रूप से प्राप्त किया गया था। अभियोजन पक्ष ने फिर एक बार इस विनिश्चय का पुनरीक्षण करने के लिए आदेश प्राप्त करने की कोशिश की और यह मामला अन्ततः आस्ट्रेलिया के हाई कोर्ट में पहुंच गया।

आस्ट्रेलिया के हाई कोर्ट द्वारा निरूपित विवेकाधिकार।

5.3. आस्ट्रेलिया के हाई कोर्ट ने यह अभिनिर्धारित किया कि दाण्डिक विचारण में न्यायाधीश को ऐसे साक्ष्य को, जो प्रामाणिक से अधिक प्रतिकूल है, अपवर्जित करने के विवेकाधिकार के अतिरिक्त यह भी विवेकाधिकार प्राप्त है कि वह अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य को भी अपवर्जित कर सकता है। किन्तु आर बनाम् सैंग[3] के मामले में लार्ड डिपलाक ने जो कहा था उसकी बजाय हाई कोर्ट ने इस विवेकाधिकार के लिए यह आधार नहीं माना कि अभियुक्त के साथ अनुचित व्यवहार हुआ था या पुलिस को अनुशासन में रखने की आवश्यकता थी। इससे कोई सन्देह नहीं कि इस बात पर चिन्ता प्रकट की गई कि यदि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को ग्रहण किया जाता है तो ऐसा प्रतीत हो सकता है कि न्यायालय ऐसे आचरण को माफ करते हैं और प्रोत्साहन भी देते हैं। किन्तु हाई कोर्ट ने जिस बात पर जोर दिया था वह नागरिक के अधिकार की संरक्षा करने की आवश्यकता पर था।[4] जस्टिस स्टीफेन और जस्टिस एकिन के शब्दों में :—

> "..... इसमें जो प्रश्न उठता है वह औचित्य का नहीं है बल्कि समाज के इस अधिकार का है कि वह उन लोगों से, जो विधि को लागू करते हैं, स्वयं विधि का आदर करने की दृढ़ता से मांग करें जिससे कि नागरिक को अपने प्राइवेट जीवन के दैनिक कार्यकलापों में अवैध रूप से बाधा पड़े बिना निरापद रहने का जो बहुमूल्य अधिकार प्राप्त है, उसे खतरा उत्पन्न न हो।"

विश्लेषण।

5.4. इस विनिश्चय में[5] अभियुक्त के प्रति उचित व्यवहार की बजाय लोकनीति को न्यायालय के इस विवेकाधिकार का आधार अभिनिर्धारित किया गया था कि वह अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित कर सकता है। निम्नलिखित[6] बातें सुसंगत (या असंगत) समझी गई थीं :

(i) क्या ऐसे व्यक्तियों द्वारा, जिनका कर्तव्य विधि को लागू करना है, विधि की उपेक्षा जानबूझकर या बिना सोच विचार की गई थी?

(ii) जब अवैधता जानबूझकर की गई हो या बिना सोचे विचारे काम करने के परिणामस्वरूप हुई है तब अवैधता की प्रकृति का कैसा प्रभाव साक्ष्य की विश्वसनीयता पर पड़ता है क्या साधारणतया यह बात विचारणीय नहीं है?

---

1. **बनिंग बनाम क्रास** (1978) 19 ए० एल० आर० 641।
2. **आर० बनाम आयरलैंड** (1970) 44 ए० एल० जे० आर० 263, 268।
3. **आर० बनाम सैंग** (पिछला अध्याय 4 देखिए)।
4. तुलना कीजिए ऐशवर्थ, "एक्सक्लूडिंग एवीडेन्स ऐज प्रोटेक्टिंग राइट्स" (1977) क्रिमिनल ला रिव्यू, 723।
5. **बनिंग बनाम क्रास** (1978), 19 ए० एल० आर० 641, 658।
6. **बनिंग बनाम क्रास** (1978) 19 ए० एल० आर० 641, 663।

(iii) विधि का पालन किए जाने का मामला,

(iv) आरोपित अपराध की प्रकृति,

(v) क्या कानूनी प्रक्रियाओं का उल्लंघन हुआ था ?

(vi) नष्ट होने वाले साक्ष्य को संरक्षित करने की अत्यावश्यकता,

(vii) वैकल्पिक और समान रूप से विश्वसनीय साक्ष्य की उपलब्धता।

5.5. यहां यह भी बता दिया जाए कि क्वीन्सलैंड में विधि प्रवर्तन की जांच समिति ने एक रिपोर्ट दी। जिसमें दाण्डिक विधि के प्रवर्तन और निष्पक्ष तथा कुशल न्याय-प्रशासन के सम्पूर्ण क्षेत्र का सर्वेक्षण किया गया है। इस रिपोर्ट में इन बातों की और विशेष रूप से निर्देश किया गया है कि किस प्रकार पुलिस अधिकारियों या अन्य व्यक्तियों द्वारा साक्ष्य को गढ़ने से रोका या मना किया जाए, पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्वेषण और पूछताछ के दौरान व्यक्तियों पर असम्यक् दबाव डाले जाने से ऐसे व्यक्तियों का संरक्षण किया जाए और क्या अन्वेषण, पूछताछ, तलाशी, अभिग्रहण और गिरफ्तारी करने के लिए पुलिस की शक्तियां आजकल की परिस्थितियों में समुदाय की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए पर्याप्त हैं? इस समिति की रिपोर्ट में इन सिफारिशों के अलावा कि पुलिस अधिकारियों के समक्ष किए ऐसे कथनों का टैपरिकार्ड किया जाना चाहिए जिनसे ऐसे कथन करने वाला व्यक्ति अभ्यारोपित अपराध में फंस जाता है और विधि के प्रवर्तन के बारे में कुछ अन्य सिफारिशें करने के अलावा अवैध साक्ष्य के बारे में भी कुछ सिफारिशें की गई हैं जिनका संक्षेप निम्नलिखित रूप में किया गया है[1] :— क्वीनसलैंड रिपोर्ट।

"विधिविरुद्ध और अनुचित तरीकों से प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित करने के न्यायिक विवेकाधिकार से सम्बन्धित विधि को नया रूप देना चाहिए और प्रत्येक अपील न्यायालय को ऐसे साक्ष्य की ग्राह्यता पर नए सिरे से विचार करने का स्वतः अबाध विवेकाधिकार होना चाहिए जिस साक्ष्य के बारे में यह कहा गया है कि वह विधिविरुद्ध या अनुचित रूप से प्राप्त किया गया था और यदि आवश्यक हो तो इस विषय पर अपनी राय को प्रथम बार के न्यायालय की राय के स्थान पर प्रतिस्थापित करनी चाहिए। इसके साथ ही न्यायालय का यह समाधान करने का भार कि विधिविरुद्ध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य ग्रहण किया जाना चाहिए उस पक्षकार पर होना चाहिए जो ऐसा साक्ष्य ग्रहण करवाना चाहता है। जिस समय अभियोजन पक्ष ऐसा साक्ष्य (जो विधिविरुद्ध या अनुचित तरीकों से प्राप्त किया गया है) प्रस्तुत करना चाहता है उस समय विवेकाधिकार का प्रयोग किए जाने में सुसंगत बातों के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें भी हैं :—

(क) जिस अपराध का अन्वेषण किया जा रहा है उस अपराध की गम्भीरता, उसे पता लगाने की अत्यावश्यकता या उसके पता लगाने में कठिनाई और उसके वास्तविक साक्ष्य का परिरक्षण करने के प्रयास की अत्यावश्यकता,

(ख) उल्लंघन का आकस्मिक या महत्वहीन स्वरूप, और

(ग) जिस साक्ष्य का विरोध किया जा रहा है वह किस हद तक उपलब्ध कामन ला या कानूनी प्रक्रिया के माध्यम से विधिपूर्ण या उचित रूप से प्राप्त किया जा सकता था।

5.6. आस्ट्रेलिया में विधिविरुद्ध रूप से प्राप्त साक्ष्य के अतिरिक्त कुछ अन्य परिस्थितियां हैं जिनमें न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है)[2] संस्वीकृतियां।

---

1. (1981 अप्रैल) खण्ड 7, सं० 2 कामनवेलथ लीगल बुलेटिन, पृष्ठ 623—625।

2. संस्वीकृतियों के बारे में देखिए नोट 'कन्फेशन्स: रिसेन्ट डेवलपमेंटस इन इंग्लैंड, [illegible]' (1980) खण्ड 29 सं० 3 आई० सी० एल० क्यू० 327—345।

अध्याय 6

कनाडा में स्थिति

1971 तक सामान्य दृष्टिकोण।

6.1. 1971 से पहले सामान्यरूप से साधारण विधि की बात की तरह यह उपधारणा की जाती थी कि कनाडा की विधि दाण्डिक न्यायालय को अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य का अपवर्जन करने का विवेकाधिकार रखने की मान्यता उसी तरह देती है जिस तरह कि इंग्लैंड में 1978 से पहले की स्थिति के बारे में समझा जाता था।[1]

1971 में कनाडा का एक मामला।

6.2. किन्तु 1971 में कनाडा के सुप्रीम कोर्ट ने एक महत्वपूर्ण निर्णय सुनाया जिसमें विवेकाधिकार की सीमा को बहुत कम कर दिया गया प्रतीत होता है, यद्यपि पूरी तरह से इसे समाप्त नहीं किया गया।

1971 में कनाडा के एक मामले में, विचारण न्यायाधीश ने हत्या के आरोप में एक अभियुक्त का विचारण (जूरी के साथ) करते हुए उसे दोषमुक्त कर दिया था। आनटारियो के कोर्ट आफ अपील में इस दोषमुक्ति के विरुद्ध क्राउन द्वारा फाइल की गई अपील भी खारिज कर दी गई।[2] क्राउन ने कनाडा के सुप्रीम कोर्ट में इसे खारिज किए जाने को अपनी अपील में चुनौती दी। इसमें मुख्य प्रश्न यह था कि आनटारियो के कोर्ट आफ अपील ने इसे खारिज करने का कारण बताते हुए इस सिद्धान्त का जो कथन किया था कि दाण्डिक मामले में विचारण करने वाले न्यायाधीश को ऐसा साक्ष्य नामंजूर कर देने का विवेकाधिकार प्राप्त है जिसे महत्वपूर्ण होते हुए भी विचारण करने वाला न्यायाधीश उस साक्ष्य को ग्रहण करना अभियुक्त के लिए अन्यायपूर्ण या अनुचित समझता था। कनाडा के सुप्रीम कोर्ट ने बहुमत से क्राउन की अपील मंजूर कर ली। इस मामले में जिस साक्ष्य के अवैध होने का अभिकथन किया गया था वह अभियुक्त की संस्वीकृति (कन्फेशन) थी जिससे अपराध में फंसाने वाले तथ्यों का पता चला था (उस राइफल का पाया जाना जिससे हत्या की गई थी)। इंग्लैंड और कनाडा के विनिश्चयों का पुनरीक्षण करने के पश्चात् मिस्टर जस्टिस मार्टलैन्ड ने कनाडा के सुप्रीम कोर्ट की ओर से बोलते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि 1949 में प्रिवी कौंसिल ने एक मामले में[3] ग्राह्य साक्ष्य को अपवर्जित करने के विवेकाधिकार की जिस सीमा को मान्यता दी है उससे अधिक सीमा को मान्यता देना अथारिटी द्वारा समर्थित नहीं है और ऐसा करना वांछनीय भी नहीं होगा। जस्टिस मार्टलैन्ड ने लार्ड चीफ जस्टिस लार्ड गोडार्ड के उस अभिमत से स्पष्ट रूप से असहमति प्रकट की जिसे लार्ड गोडार्ड ने 1955 के एक इंग्लिश मामले में इस प्रकार व्यक्त किया था[4] कि "यदि साक्ष्य के कड़े नियमों को लागू करने से अभियुक्त पर अनुचित प्रभाव पड़ता है तो न्यायाधीश को ऐसा साक्ष्य अस्वीकार करने का विवेकाधिकार सदैव प्राप्त है।" उन्होंने यह बताया कि 1955 के बाद से इंग्लैंड में जो विनिश्चय किए गए हैं उन सब में लार्ड गोडार्ड के सिद्धान्त का सहारा लिया गया है जो उनकी (जस्टिस मार्टलैंड) की दृष्टि में प्राधिकरण द्वारा समर्थित नहीं है।

कनाडा में संवैधानिक मामला।

6.3. क्या साक्ष्य केवल इस तथ्य के कारण अग्राह्य हो जाता है कि वह कैनाडियन बिल आफ राइट्स के उपबन्धों के उल्लंघन में उपाप्त किया गया है? 1975 में कनाडा के सुप्रीम कोर्ट ने एक विनिर्णय (रूलिंग) में एक प्रमाणपत्र की ग्राह्यता के प्रश्न पर विचार किया[5] जिसका सम्बन्ध ऐसे अधिकारियों द्वारा श्वास-परीक्षण करने से था जिन अधिकारियों ने अभियुक्त द्वारा काउन्सल से परामर्श लेने की प्रार्थना को पहले इन्कार कर दिया था।

---

1. पीछे अध्याय 4।
2. **क्वीन बनाम वारनी** 1971 एस० सी० आर० 272 (कनाडा)।
3. **तूर मोहम्मद बनाम दि किंग** (1949) ए०सी० 182 (1949) 1 आल ई० आर० 510 (प्रिवी कौंसिल)।
4. **कुरमा बनाम दि क्वीन** (1955) ए० सी० 197 (प्रिवी कौंसिल)।
5. **होगन बनाम दि क्वीन** (1975) 2 एस० सी० आर० 574 (कनाडा)।

अभियुक्त की ओर से यह बहस की गई कि काउन्सल से परामर्श करने का अवसर देने को इन्कार किया जाना कनाडियन बिल आफ राइट्स का उल्लंघन है और श्वास-परीक्षण तथा उसका नमूना अवैध रूप से प्राप्त किया गया था इसलिए उससे संबंधित प्रमाणपत्र को साक्ष्य के रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया कि भले ही साक्ष्य अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त किया गया था लेकिन उसे कामन ला में अपवर्जित करने का कोई आधार नहीं था और नशे के अन्य साक्ष्य विद्यमान होने से कोई भी व्यक्ति इस साक्ष्य को इस सबूत के लिए स्वीकार किए जाने के लिए अनुचित नहीं बता सकता है कि रक्त शिराओं में अलकोहल की ठीक-ठीक कितनी मात्रा चली गई थी। बहुमत का निर्णय सुनाते हुए जस्टिस रिटचे ने कहा "मैं इस बात से सहमत नहीं हो सकता कि उक्त बिल (कैनेडियन बिल आफ राइट्स) के किसी उपबंध का जब कभी भंग हुआ हो तो अमरीकी माडल पर साक्ष्य को पूर्ण रूप से अपवर्जन करने के नियम को अपनाना न्यायोचित होगा क्योंकि ऐसा करना इस देश में बहुत से स्वीकृत कामन ला के नियम का अल्पीकरण होगा"। यह साक्ष्य कैनेडियन बिल आफ राइट्स की धारा 2(सी) (ii) के उल्लंघन में प्राप्त किया गया था और उस धारा में (जहां तक वह सारवान् है) निम्नलिखित उपबन्ध है—

> "2. कनाडा की किसी विधि का न तो इस प्रकार अर्थान्वयन किया जाएगा या न उसे ऐसे लागू किया जाएगा जिससे कि—
>
> (ग) ऐसा व्यक्ति जो गिरफ्तार या अभिरुद्ध किया गया है,
>
> (ii) अविलम्ब परामर्शी (कौंसेल) रखने और उसे अनुदेश देने के अधिकार से.....वंचित किया जाए।"

जस्टिस रिटचे ने न्यायालय के बहुमत की ओर से बोलते हुए और अभियुक्त व्यक्ति की उस अपील को खारिज करते हुए, जो उसने नौवा स्कोशिया सुप्रीम कोर्ट (अपील डिवीजन) के उस निर्णय के विरुद्ध की थी, जिसमें अभियुक्त की आपराधिक आरोप पर दोषसिद्धि की पुष्टि की गई थी, निम्नलिखित विचार प्रकट किए थे जिनसे इस विषय का निपटारा कर दिया :—

> "**आर०** बनाम **ड्राइबोन्स**[1] का मामला इस प्रतिपादन के लिए प्रामाणिक (नजीर) है कि कनाडा की किसी भी ऐसी विधि को, कनाडियन बिल आफ राइट्स द्वारा गारन्टी दिए गए किसी अधिकार का निराकरण, न्यूनन या अतिलंघन करती है, अप्रवर्तनीय घोषित कर देना चाहिए और इस विस्तार तक उस कानून (अर्थात् केनिडियन बिल आफ राइट्स) के उपबन्धों को सर्वोपरि प्रधानता दी जाती है किन्तु केनेडियन बिल आफ राइट्स के संवैधानिक प्रभाव के बारे में जो भी दृष्टिकोण अपनाया जाए और उन व्यक्तियों के प्रति जो भिन्न राय रखते हों, सभी प्रकार का आदर व्यक्त करते हुए मैं इस बात से सहमत नहीं हो सकता कि उक्त बिल के किसी उपबन्ध का जब कभी भंग हुआ है तब अमरीकी माडल पर साक्ष्य का पूर्ण रूप से अपवर्जन करने का नियम अपनाना न्याय-संगत होगा क्योंकि ऐसा करना इस देश में बहुत समय से स्वीकृत कामन ला नियम का अल्पीकरण होगा।

संवैधानिक और विधिक स्थिति।

6.4. जहां तक अभिनिश्चित किया जा सका है कनाडा में स्थिति अभी भी बहुत कुछ वैसी ही है जैसी कि उपर्युक्त पैरों में कही गई है या अभिनिर्धारित है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि (क) साधारण विधि के विषय के रूप में (अर्थात् संवैधानिक विवादकों को छोड़कर) अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित करने के लिए कनाडा के न्यायालयों का विवेकाधिकार बहुत सीमित है।[2]

---

1. **आर० बनाम ड्राइबोन्स** (1970) एस० सी० आर०, 282 9 डी० एल० आर० (थर्ड) 473 (सुप्रीम कोर्ट आफ कनाडा)।
2. पीछे पैरा 6.2।

(ख) संवैधानिक विधि के क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले विषयों में भी अर्थात् जहां कैनेडियन बिल आफ राइट्स के किसी विनिर्दिष्ट उपबन्ध का उल्लंघन हुआ है वहां इसके बारे में इससे अधिक कड़ा या भिन्न अनुमोदन मिलना प्रतीत नहीं होता है[1]।

कनाडियन विधि के कुछ लेखक यहां तक सोचते हैं कि **क्वीन** बनाम **बारे**[2] के मामले में कनाडा के सुप्रीम कोर्ट के बहुमत के निर्णय ने कनाडा में उस स्थिति में साक्ष्य अपवर्जित करने के न्यायिक विवेकाधिकार को पर्याप्त रूप से समाप्त कर दिया है जिसमें विवेकाधिकार का प्रयोग साक्ष्य प्राप्त करने के तरीके पर आधारित है।[3]

कुछ लेखक यह भी सोचते हैं कि **आर०** बनाम **बारे** के मामले में बहुमत के निर्णय ने कनाडा में ऐसे साक्ष्य को अपवर्जित करने के न्यायिक विवेकाधिकार को पर्याप्त रूप से समाप्त कर दिया है जिस विवेकाधिकार का प्रयोग साक्ष्य प्राप्त करने के तरीके पर आधारित है।[3]

ओनटारियों का विधि आयोग।

6.5. कनाडा में सुधार के लिए किए जा रहे कुछ उपायों के प्रति निर्देश करना हितकर होगा। ओनटारियों विधि सुधार आयोग ने अवैधता से बचने के हित में और प्रामाणिक साक्ष्य ग्रहण किए जाने के हित में समन्वय करने के लिए विधान बनाए जाने की सिफारिश की है। प्रस्तावित उपबंध निम्नलिखित रूप में होगा :

> "ऐसी किसी कार्यवाही में, जिसमें यह दिखाया गया हो कि साक्ष्य में पेश की गई कोई चीज अवैध तरीकों से प्राप्त की गई थी, न्यायालय अवैधता की प्रकृति और उन सभी परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् जिनमें वह चीज पेश की गई थी, उसे साक्ष्य में ग्रहण करने से उस दशा में इन्कार कर सकता है जब कि न्यायालय को यह राय हो कि जिन अवैध तरीकों से वह चीज प्राप्त की गई थी उन तरीकों की प्रकृति से उसे साक्ष्य में ग्रहण करने से उस पक्षकार के प्रति अन्याय होगा जिस पक्षकार के विरुद्ध वह पेश की गई है।"[4]

(कनाडा में) प्रस्तावित साक्ष्य संहिता।

6.6. (कनाडा में) प्रस्तावित साक्ष्य संहिता की धारा 15 में प्रत्यक्ष रूप से इस यथार्थ समस्या का उल्लेख तो नहीं किया गया है लेकिन अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की समस्या का हल निकालने की कोशिश की गई है जो अधिक कठिन है।[5]

> "15. (1) यदि साक्ष्य ऐसी परिस्थितियों में प्राप्त किया गया था जिनसे, कार्यवाहियों में उसका उपयोग किए जाने से न्याय प्रशासन को बदनामी होगी तो ऐसे साक्ष्य को अपवर्जित कर दिया जाएगा।
>
> (2) यह अवधारित करने में कि क्या साक्ष्य को इस धारा के अधीन अपवर्जित कर देना चाहिए उन सभी परिस्थितियों पर जो कार्यवाहियों से सम्बन्धित हैं और उस रीति पर जिसमें साक्ष्य प्राप्त किया गया था, विचार किया जाएगा और इन बातों पर भी विचार किया जाएगा कि साक्ष्य प्राप्त करने में किस हद तक मानव

---

1. पीछे पैरा 6.3।
2. पीछे पैरा 6.3।
3. के० ग्राफ एण्ड एस० क्लार्क "एडमिसिबिलिटी आफ इलगली आबटेन्ड एवीडेन्स (1981) पृष्ठ 31, बेरी एफ० ग्रेन्क्स द्वारा उद्धृत, कमेन्ट (फरवरी, 1983) 57; टुलेन ला रिव्यू, 648, 664।
4. स्टेनली शिफ, एविडेन्स इन दि लिटिगेशन प्रोसेस (1978) खण्ड 2, पृष्ठ 961।
5. स्टेनली शिफ, एवीडेन्स इन दि लिटिगेशन प्रोसेस (1978), खंड 2, पृष्ठ 961 कनाडा का विधि सुधार आयोग की साक्ष्य के बारे में रिपोर्ट, (1975) पृष्ठ 22।

गरिमा और सामाजिक मूल्यों को भंग किया गया था, मामला कितना गम्भीर है, साक्ष्य का कितना महत्व है, अभियुक्त की या अन्य व्यक्तियों की कोई हानि जानबूझकर की गई थी या नहीं और क्या ऐसी परिस्थितियां विद्यमान थीं जिनमें कार्रवाई करना आवश्यक था जैसे कि साक्ष्य नष्ट होने या खो जाने को रोकने के लिए कार्रवाई करना आवश्यक होना।"

नुकसानों के लिए सिविल कार्रवाई।

6.7. ऐसा प्रतीत होता है कि अभी यह प्रस्ताव विधि के रूप में अधिनियमित नहीं किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कनाडा में अपकृत्य (टार्ट) से नुकसानी के मामले में अपराध करने वाले पदाधिकारी के विरुद्ध सिविल कार्रवाई करने का उपाय ही प्रचलित है।[1]

संसूचनाओं को बीच में रोक कर मालूम करना।

6.8. संसूचनाओं को बीच में रोक कर मालूम करने के बारे में कनाडा की दाण्डिक संहिता (केनैडियन क्रिमिनल कोड) की धारा 178-16 में विस्तृत उपबन्ध है जिसका उल्लेख हम अमरीकी स्थिति पर विचार-विमर्श करते समय करेंगे।[2]

अध्याय 7

अमरीका में स्थिति

तलाशी और अभिग्रहण (चौथा संशोधन)।

7.1. अमरीकी विधि इस विषय की चरम सीमा की स्थिति का दृष्टान्त प्रस्तुत करती है क्योंकि उस देश में इसका न्यायिक निर्वचन एक संवैधानिक गारन्टी के रूप में किया गया है। इस दृष्टिकोण के बहुत से उदाहरण चौथा संशोधन (फोर्थ एमंडमेन्ट) से लिए जा सकते हैं। साक्ष्य के सम्बन्ध में एक काफी अद्यतन पुस्तक में उस देश में तलाशी और अभिग्रहण से सम्बन्धित विधि का स्पष्ट और संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित शब्दों में दिया गया है:[3]

> "सरकार द्वारा प्रेरित अवैध तलाशियों और अभिग्रहणों के विरुद्ध संघीय संवैधानिक प्रतिषेध का उल्लंघन करके (जो बहुत पहले का न हो या जिसका क्षीण परिणाम न हो) प्राप्त किए गए साक्ष्य को——————(इस उद्धरण में वह अंश नहीं दिया गया है जो इसमें कोष्ठक में दिया गया है) उस देश के किसी न्यायालय में दाण्डिक मामले में उस व्यक्ति के विरुद्ध, जिसके अधिकारों का अतिक्रमण हुआ है, मूल साक्ष्य के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता (इस उद्धरण में वह अंश नहीं दिया गया है जो उसमें कोष्ठक में दिया गया है)

(वहां की स्थिति के उपर्युक्त विवरण में) जिस बात का उल्लेख पहले कोष्ठक में किया गया है वह संघीय संवैधानिक प्रतिषेध के सम्बन्ध में है। उसमें यह कहा गया है कि चौथे संशोधन में अवैध तलाशियों और अभिग्रहणों के विरुद्ध संघीय संवैधानिक प्रतिषेध "राज्य के एजेन्टों के विरुद्ध चौथे संशोधन के आधार पर लागू होते हैं——दोनों उपबन्धों का वर्तमान विषय के बारे में जैसा निर्वचन किया गया है उसके अनुसार दोनों उपबन्धों का विस्तार या समापन सम्भवतः एक समान है। उपर्युक्त विवरण के दूसरे कोष्ठक में उल्लिखित बात के बारे में यह कहा गया है कि दाण्डिक मामले में मूल साक्ष्य के रूप में ग्रहण किए जाने का वर्जन फिर वही चौथे संशोधनों के आधार पर होता है जिनका इन प्रयोजनों के लिए विस्तार या समापन एक समान है।"

---

1. बैरी एफ० शार्वुस——कमेंन्ट (फरवरी, 1983) 57 टुलाना ला रिव्यू — 648–6651
2. इंग्लैंड की स्थिति के लिए देखिए सी० पी० वाकर——पुलिस सरविलिएन्स वाई टेकनीकल डिवाइसेज (1980) पब्लिक ला 184, 191–1981
3. राथसटीन एवीडेन्स इन ए नटशेल (मई, 1981), पृष्ठ 4651

संवैधानिक अधिकार—इसके उल्लंघन का साक्ष्य की विधि पर प्रभाव।

7.2. इस प्रकार अमरीका में संवैधानिक अधिकारों के उल्लंघनों के लिए न केवल साधारण सिविल, दाण्डिक और साम्यापूर्ण कार्रवाई करने की मंजूरी है बल्कि ऐसे अधिकारों को भंग करके प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित करना एक विशेषाधिकार भी है।[1]

अवैध तलाशी के सम्बन्ध में अपवाद।

7.3. ऐसे मामले में अभियोग लगाने के लिए[2] (विश्वसनीयता को अधिक्षिप्त करने के लिए) साक्ष्य का उपयोग करने के विशेषाधिकार का अपवाद है जब कि अभियुक्त, जो अवैध तलाशी या अभिग्रहण का शिकार हुआ है, (या तो प्रत्यक्ष परीक्षा में या प्रतिपरीक्षा में) इस बात से इन्कार करता है कि अवैध तलाशी या अभिग्रहण के परिणामस्वरूप उससे अभिग्रहीत सामग्री उसके कब्जे में थी।[3]

अवैध तलाशी और अभिग्रहण।

7.4. अमरीका में कौन सी बात से तलाशी और अभिग्रहण अवैध हो जाता है यह विषय साक्ष्य विधि के विषय से अधिक संवैधानिक विधि का विषय है। किन्तु कुछ महत्वपूर्ण बातें वर्तमान विचार-विमर्श के लिए सुसंगत हैं जिनका वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है[4] :—

यदि तलाशी या अभिग्रहण निम्नलिखित बातों के बारे में अनुचित है तो वह अवैध होगी :—

(i) सन्देह के आधार, जिन पर तलाशी ली गई या अभिग्रहण किया गया है (भले ही तलाशी लेने के बाद पर्याप्त आधारों का पता चले), या

(ii) निष्पादन की रीति, अर्थात् तलाशी लेने या अभिग्रहण करने की रीति, या

(iii) तलाशी किस विस्तार या सीमा तक की गई है, या

(iv) कौन-कौन सी चीजें अभिग्रहीत की गई हैं।

गिरफ्तारी।

7.5. किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी उसका "अभिग्रहण" है इसलिए ऐसी गिरफ्तारी को संवैधानिक होने के लिए और इसके परिणामस्वरूप प्राप्त साक्ष्य को वैध माने जाने के लिए उपर्युक्त अपेक्षाओं का पालन अवश्य किया जाना चाहिए।

वारन्ट कब अपेक्षित है?

7.6. यदि इन बातों का पालन किया जाता है तो (गिरफ्तारी या तलाशी) का वारन्ट आवश्यक रूप से अपेक्षित नहीं है। किन्तु ऐसे विशेष क्षेत्रों में, जिनमें न्यायालय प्राइवेसी की प्रत्याशा अधिक करते हैं, (इन अन्य अपेक्षाओं के अतिरिक्त) वारन्ट भी अपेक्षित है (परन्तु तब जब कि वारन्ट प्राप्त करने में विधि के प्रवर्तन की महत्वपूर्ण समस्याएं उत्पन्न नहीं होती, जैसे कि प्रतिवादी के घर की तलाशी के बारे में[5] वारंट जब कि यह मान लिया जाए इसके लिए विशेष रूप से अत्यावश्यक परिस्थितियां नहीं थीं।[4]

सिविल मामले।

7.7. अमरीका में इसी प्रकार के विशेषाधिकार का विस्तार सिविल मामलों पर करने की कुछ अधिकारिताएं प्राप्त हैं। किन्तु सुप्रीम कोर्ट इस दृष्टिकोण के पक्ष में नहीं है।[6]

---

1. राथसटीन, एवीडेन्स इन ए नटशेल (मई, 1981) पृष्ठ 463।
2. राथसटीन, एवीडेन्स इन ए नटशेल (मई, 1981) पृष्ठ 465–466।
3. (क) यू० एस० (अमेरिका) बनाम हेवन्स (1980) 446 यू० एस० 620।
   (ख) वाल्डर बनाम यू० एस० (अमरिका) (1954) 347 यू० एस० 62।
4. राथसटीन, एवीड़न्स इन ए नटशेल (मई, 1981) पृष्ठ 466–477।
5. यू० एस० बनाम चाडूरक (1977) 433 यू० एस० 1।
6. यू० एस० बनाम जेनिस (1976) 428, यू० एस० 433।

7.8. अमरिका के सुप्रीम कोर्ट ने अवैध तलाशी द्वारा प्राप्त साक्ष्य के सम्बन्ध में जो दृष्टिकोण अपनाया है उसके प्रति प्रशासन से सम्बद्ध व्यक्तियों और शैक्षणिक लेखकों ने भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएं व्यक्त की हैं। आलोचना।

न्यू आर्लिएन्स में अमरिकी बार एसोशिएशन (विधिज्ञ संघ) के[1] 1981 के वार्षिक अधिवेशन में बोलते हुए उपराष्ट्रपति बुश ने ऐसे वकील की निन्दा की थी "जो किसी क्रूर हत्यारे को साक्ष्य अपवर्जित करने के नियम का निपुणता से उपयोग करके दोषमुक्त करा देता है।" और इस नियम को परिवर्तित करने के लिए "हिंसात्मक अपराध" के विषय में एटर्नी जनरल के कार्यकारी दल (एटर्नी जनरल'स टास्क फोर्स आन वायलेन्ट क्राइम) द्वारा की गई मांग का समर्थन किया था। कुछ सप्ताहों के बाद न्यू आर्लिएन्स में राष्ट्रपति रीगन ने भी इस कार्यकारी दल की सिफारिश का समर्थन किया और यह कहा कि यह नियम "निरर्थक प्रतिपादना" पर आधारित है। इससे पहले भी 1971 में चीफ जस्टिस बर्जर ने (विसम्मति प्रकट करते हुए) घोषणा की थी कि इस नियम के परिणामस्वरूप "असंख्य दोषी अपराधी" छोड़ दिए जाते हैं।

7.9. इस मत के विपरीत अमरीकी बार एसोसिएशन के एक प्रवक्ता ने कार्यकारी दल (टास्क फोर्स) से इस नियम को कायम रखने के लिए समर्थन की मांग की थी और अभी हाल में ही यह दृढ़ कथन किया था कि अपवर्जनकारी नियम (जो अवैध रूप से अभिग्रहीत साक्ष्य को आपराधिक प्रतिवादी के विरुद्ध उपयोग किए जाने को प्रतिसिद्ध करता है) से "पर्याप्त विधि सुधार हुआ है ....संघीय विधि प्रवर्तक अधिकारियों की वृत्तिक योग्यता बढ़ी है (और) संघीय न्यायिक प्रक्रिया की विश्वसनीयता बहुत बढ़ गई है।[1]

7.10. अभी हाल में ही इस विषय पर की गई आलोचना में विरोधी दृष्टिकोणों का सारांश देते हुए निम्नलिखित विचार प्रकट किए गए हैं।[1] चौथे संशोधन पर आधारित अपवर्जनकारी नियम की हाल में की गई आलोचना।

"प्रमुख रूप से और बार-बार दुहराए गए इन कथनों से जो बात स्पष्ट रूप से प्रकट होती है वह यह है कि जो लोग चौथे संशोधन के अपवर्जनकारी नियम के गुण-दोषों पर वादविवाद करते हैं....जिनमें न्यायाधीश भी सम्मिलित हैं....वे इस नियम के प्रवर्तन और प्रभाव से सम्बन्धित तथ्यों का दृढ़ता से कथन करने में डरते नहीं हैं।

किन्तु इन दृढ़ कथनों के लिए क्या अनुभवजन्य समर्थन प्राप्त है? यदि नहीं, तो क्या हमें अनुभव के आधार पर इनका परीक्षण करने की क्षमता है? अपवर्जनकारी नियम का सुधार करने या इसे छोड़ देने के लिए न्यायिक और राजनीतिक आन्दोलन जैसे जैसे जोर पकड़ते जा रहे हैं वैसे-वैसे इन प्रश्नों का महत्व बढ़ता जा रहा है। [इस नियम का सुधार करने या इसे निकाल देने का बिल (विधेयक) इस समय सीनेट में लम्बित है] और विधिज्ञ दल तथा अन्य व्यक्ति इसके बचाव के लिए काफी साधन जुटा रहे हैं। जानकारी देने वाली अनुभवजन्य सामग्री का फायदा उठाए बिना हम एक महत्वपूर्ण नीति के विनिश्चय के कगार पर हैं।"

7.11. अमरीका में चौथे संशोधन का विस्तार समुचित तलाशी पर लागू किए जाने के अलावा उस साक्ष्य को अपवर्जित करने पर लागू करने के लिये बढ़ा दिया गया है[2] जो किसी अभियुक्त व्यक्ति की टेलीफोन बूथ से टेलीफोन पर की गई ऐसी बातचीत के बारें में हो जिसका साक्ष्य टेलीफोन बूथ के बाहर बातचीत सुनने और रेकार्ड करने वाला बिजली का यंत्र लगा कर प्राप्त किया गया हो। अमरीका में संसूचनाओं को बीच में रोक कर मालूम करना।

---

1. विलियम ए० ग्लेनर—"इज दि एवीडेन्स इन फार दि एक्सक्लूशनरी रूल" (मई, 1981) 67, ए बी ए जे 1642।

2. काट्ज बनाम यू० एस० (1967) 389 यू० एस० 347।

कनाडा की विधि—कनेडियन क्रिमिनल कोड की धारा 178.16।

7.12. इस उपबन्ध की तुलना कनाडा के उस कानूनी उपबंध से की जा सकती है जो 1977 में केनेडियन क्रिमिनल कोड में धारा 178.16 के रूप में अन्तः स्थापित किया गया था जिससे यह प्रकट होता है कि यह अमरीकी उपबंध के कितना विपरीत है। उक्त धारा 178.16 (जहां तक तान्वित है) इस प्रकार है[1] :—

"178.16 (1) प्राइवेट संसूचना जिसे बीच में रोक कर पता लगाया गया है, संसूचना भेजने वाले व्यक्ति के विरुद्ध या उस व्यक्ति के विरुद्ध जिसके द्वारा प्राप्त किए जाने के लिये संसूचना भेजने वाले व्यक्ति का मंतव्यथा, साक्ष्य के रूप में अग्राह्य है किन्तु उस दशा में ग्राह्य है जब कि—

(क) ऐसी संसूचना का विधिपूर्णतया ढंग से बीच में रोक कर मालूम किया गया हो, या

(ख) संसूचना भेजने वाले व्यक्ति ने या उस व्यक्ति ने, जिसके द्वारा संसूचना प्राप्त किए जाने के लिये संसूचना भेजने वाले व्यक्ति का मन्तव्य था, इस साक्ष्य के रूप में ग्रहण किए जाने के लिये अभिव्यक्त रूप से सहमति दे दी हो, किन्तु प्राइवेट संसूचना को बीच में रोक कर मालूम की गई जानकारी के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त साक्ष्य—साक्ष्य में केवल इस कारण अग्राह्य है कि प्राइवेट संसूचना साक्ष्य में स्वतः अग्राह्य है।

(2) उपधारा (1) के होते हुए भी किसी कार्यवाही में पीठासीन न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट की यदि यह राय है कि ऐसे साक्ष्य का ग्रहण किए जाने से न्याय-प्रशासन की बदनामी होगी तो वह प्राइवेट संसूचना को बीच में रोक कर मालूम की गई जानकारी के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त साक्ष्य को, जो स्वतः साक्ष्य में अग्राह्य है, ग्रहण करने से इनकार कर सकता है।

(3) यदि किसी कार्यवाही में पीठासीन न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट की यह राय है कि उस कार्यवाही में प्राइवेट संसूचना साक्ष्य के रूप में उपधारा (1) के आधार पर अग्राह्य तो है किन्तु —

(क) कार्यवाही में विवाद्यक विषय से सुसंगत है, और

(ख) केवल किसी ऐसी प्रारूपिक त्रुटि या प्रक्रिया में अनियमित होने के कारण अग्राह्य है जो त्रुटि या अनियमितता, ऐसी प्राइवेट संसूचना को बीच में रोक पता लगाए जाने के उस प्राधिकार को लागू करने में या उस प्राधिकार को प्रदान किए जाने में, जिस प्राधिकार के अधीन ऐसी प्राइवेट संसूचना को बीच में रोक कर पता लगाया गया था, महत्वपूर्ण नहीं थी।

तो वह उपधारा (1) के होते हुए भी ऐसी प्राइवेट संसूचना को कार्यवाही में साक्ष्य के रूप में ग्रहण कर सकता है।

अमरीका में स्थापित प्रवृत्ति।

7.13. अमरीका के सुप्रीम कोर्ट ने नागरिक स्वतंत्रताओं की संवैधानिक गारंटियों की जो दुहाई दी है वह कनाडा की स्थिति से भिन्न है और यद्यपि अभी हाल के वर्षों में इसमें कुछ कमी आ गई है फिर भी यह सम्भव नहीं है कि सन् 1950 और 1960 के बीच स्थापित प्रवृत्ति एकदम उलट जाए। इस विषय में सामान्य दृष्टिकोण ऐसे साक्ष्य को अपवर्जित करना रहा है जो विनिर्दिष्ट संवैधानिक प्रतिबंधों या उल्लंघन करके प्राप्त किया गया हो। इस सिद्धान्त का बहुत स्पष्ट कथन 1952 में विनिश्चित प्रसिद्ध मामले में किया गया था[2], जिसमें यह अभिनिर्धारित है कि अभियुक्त के सम्यक् प्रक्रिया के अधिकार (राज्य प्राधिकारियों से दुर्व्यवहार से स्वतंत्र

1. केनेडियन क्रिमिनल कोड़ की धारा 178.16 जो स्टेनली शिफ की पुस्तक "एवीडेन्स इन दि लिटीगेशन प्रोसेस' (1978)" खण्ड 2 में पृष्ठ 961 पर उद्धृत है।

2. रोचिन बनाम कैलिफोर्निया (1952) यू० एस० 165।

होने का अधिकार) के उल्लंघन के परिणामस्वरूप प्राप्त साक्ष्य यदि दाण्डिक मामले में उस व्यक्ति के विरुद्ध पेश किया जाता है तो, यह उसके सम्यक् प्रक्रिया के अधिकार का स्वतः उल्लंघन होगा। उक्त मामले में अभियुक्त को अपराध में फंसाने वाला ऐसा साक्ष्य वमन करना पड़ा जिसे वह निगल गया था। यदि प्रतिवादी (अभियुक्त) से शारीरिक साक्ष्य जबरदस्ती प्राप्त करो की बजाय प्रमाण सम्बन्धीकथन जबरदस्ती प्राप्त किए गए होते तो यह सिद्धांत जबरदस्ती संस्वीकृतियां प्राप्त करने और अपने आपको अपराध में फंसाने के सिद्धांत की अतिव्याप्ति कर देता। यह सिद्धांत अभी ऐसे दुरुपयोग के बारे में लागू नहीं किया गया है जो सरकार द्वारा या सरकार के लिए या सरकार की सहअपराधिता के कारण नहीं हुआ है या सिविल मामलों में लागू नहीं किया गया है।

विधि का विकास।

7.14. इस सिद्धांत का विकास 1964 के एक अन्य प्रसिद्ध मामले में[1] किया गया था जिसमें पुलिस ने अभियुक्त की यह प्रार्थना कि वह पूछताछ के दौरान अपने वकील से परामर्श करे, नामंजूर कर दी थी और उसे यह नहीं बताया गया था कि उसे चुप रहने का अधिकार है। पुलिस अभिरक्षा में जिस समय अभियुक्त से पूछताछ की जा रही थी और उस पर आरोप लगाए जाने से पहले उसके द्वारा किए गए एक अन्तवर्ती कथन को पश्चात्-वर्ती विचारण में पुलिस की उपर्युक्त नामंजूरी के कारण अग्राह्य अभिनिर्धारित किया गया। यह विनिर्णय (रूलिंग) अमरीका के संविधान के छठे संशोधन पर आधारित था। यह जहां तक तात्विक है, इस प्रकार से है:—

> "सभी आपराधिक अभियोजनों में अभियुक्त अपनी प्रतिरक्षा (सफाई) के लिए कौंसिल से सहायता लेने के अधिकार का उपभोग करेगा।"

1961 से 1966 तक के मामले।

7.15. आगे चलकर 1966[2] में संदिग्ध अपराधियों से पुलिस द्वारा पूछताछ किए जाने के नियमों की विस्तार से जांच की गई। नए सिद्धांत का कथन इस प्रकार से किया गया था (न्यायालय के ही शब्दों को उद्धृत कर दें)—

"अभियोजन पक्ष ऐसे कथनों को, चाहे वे निर्दोषी ठहराने वाले या दोषी बनाने वाले हों, और जो अभिरक्षा में रखे गए प्रतिवादी से पूछताछ के दौरान उसके द्वारा किए गए हों, तब तक इस्तेमाल नहीं कर सकता जब तक कि अभियोजन पक्ष यह नहीं दर्शित कर देता कि अपने आपको अपराध में फंसाने के विरुद्ध विशेषाधिकार सुनिश्चित करने के लिए प्रक्रिया संबंधी कारगर रक्षापायों का उपयोग किया गया था" (पांचवां संशोधन यह गारंटी देता है कि "किसी भी व्यक्ति को किसी आपराधिक मामले में अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा ----)"।

1961 का पूर्वतर विनिश्चय[3] भी समान रूप से सुसंगत है। चौथा संशोधन यह गारंटी देता है कि "लोगों को अपने शरीर, मकान, कागजपत्र और साजसामान की अनुचित तलाशी और अभिग्रहण" के विरुद्ध सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है। इस संवैधानिक गारंटी को क्रियान्वित करने में सुप्रीम कोर्ट ने यह अभिनिर्धारित किया कि पुलिस द्वारा अभिगृहीत किसी वास्तविक पदार्थ को सभी संघीय और राज्य की दाण्डिक कार्यवाहियों में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाना वर्जित है।

राज्य न्यायालय।

7.16. सुप्रीम कोर्ट ने वुल्फ बनाम कोलोरेडो[4] के मामले से पहले तक इस प्रश्न पर विचार नहीं किया था कि अपवर्जनकारी नियम राज्य न्यायालयों में लागू होता है या नहीं।

1. इस्कोवेडो बनाम इलिनायस (1964) 378, यू० एस० 478।
2. मिरेंडा बनाम एरिजोना (1966) 384 यू० एस० 436।
3. मैप बनाम ओहियो (1961) 367 यू० एस० 643 देखिए पैरा 7.17 आगे।
4. वुल्फ बनाम कोलोरेडो (1949) 338 यू० एस० 25 (जिसमें अन्य देशों की तुलनात्मक पद्धति का भी पुनर्विलोकन किया गया है) (जिसे माप बनाम ओहियो (1961) 367 यू० एस० 463 में नामंजूर कर दिया गया है।

उक्त मामले में चौथे संशोधन को राज्यों पर बाध्यकारी माना गया लेकिन न्यायालय के छह सदस्यों ने यह मत प्रकट किया कि चौथे संशोधन में अपवर्जनकारी नियम सम्मिलित नहीं है। मिस्टर जस्टिस फ्रैंकफरटर ने इस मुद्दे पर पद्धति का सर्वेक्षण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि "अंग्रेजी बोलने वाले अधिकांश देश इस प्रकार (अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित करना महत्वपूर्ण नहीं समझते"। तदनुसार उसने कहा कि "न्यायालय को यह उपाय अधिकार का एक अत्यावश्यक अंग मानने से हिचकना चाहिए"। यदि एकान्तता (प्राइवेसी) का अतिक्रमण करके प्राप्त साक्ष्य का उपयोग न्यायालय में फिर भी किया जाता है तो जस्टिस फ्रैंकफरटर द्वारा सुझाई गई अनुशास्तियां (सैन्कशन्स) ये थीं कि "प्राइवेट कार्रवाई और ऐसा संरक्षण करने के उपाय को पुलिस के अन्दरुनी अनुशासन के लिए लागू करने पर जनता को सतर्कता बरतनी चाहिए।"

7.17. न्यायालय ने **माप बनाम ओहियो**[1] के मामले में तीन के विरुद्ध पांच मतों से **वुल्फ बनाम कोलोरेडो** के निर्णय को नामंजूर कर दिया। पुलिस अधिकारियों ने यह सन्देह करते हुए कि विधि का उल्लंघन करने वाला एक व्यक्ति एक मकान में छिपा हुआ था उस मकान के दरवाजे को तोड़ दिया, उसमें रहने वाली एक महिला के साथ दुर्व्यवहार किया, पूरे परिसर की तलाशी ली और एक बक्से में से कुछ अश्लील सामग्री बरामद की। महिला को उस सामग्री का कब्जा रखने के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया। राज्य न्यायालय ने यह बताते हुए कि प्रतिवादी (अभियुक्त) के शरीर से ऐसी सामग्री क्रूर या क्लेशकर शारीरिक बल का प्रयोग करके ली गई थी (जैसा कि रोचीन के मामले[2] में हुआ था) ऐसी सामग्री का साक्ष्य में उपयोग किए जाने की अनुमति वुल्फ के मामले के आधार पर दी किन्तु जस्टिस क्लार्क ने **वुल्फ बनाम कोलोरेडो** के मामले का निपटारा निम्नलिखित बातें कह कर किया था:—

"(वुल्फ के मामले में) दोषसिद्धि के लिए राज्य के लिए जो हेय आसान तरीका अपनाने की छूट दे दी गई थी उससे उन संवैधानिक अवरोधों की संपूर्ण पद्धति नष्ट करने की प्रवृत्ति थी जिन अवरोधों पर लोगों की स्वतंत्रताएं आधारित हैं। जब चौथे संशोधन में अन्तर्निहित एकांतता (प्राइवेसी) के अधिकार को यह मान्यता दे दी गई थी कि यह अधिकार राज्यों के विरुद्ध प्रवर्तनीय है और इसलिए राज्य अधिकारियों द्वारा प्राइवेसी पर असम्य आक्रमण के विरुद्ध संरक्षण प्रदान किए जाने का अधिकार का स्रोत संवैधानिक है तब हम यह अनुमति नहीं दे सकते कि फिर यह अधिकार एक खोखली प्रतिज्ञा रहेगा।"

अमेरिका में निर्णयज विधि।

7.18. 1914 से पहले अमेरिकी न्यायालयों में ऐसा साक्ष्य, जो अवैध रूप से प्राप्त किया गया हो, सदैव ग्राह्य था।[3] तब से यह विधि संविधान के चतुर्थ पांचवें और चौदहवें संशोधनों के न्यायिक अर्थान्वयन से परिवर्तित हो गई है। अमेरिकी न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुचित तलाशियों और अभिग्रहणों के विरुद्ध सुरक्षा का अधिकार जो चौथे संशोधन द्वारा प्रदत्त है, तभी लागू किया जा सकता है जब कि इसे भंग करके प्राप्त साक्ष्य को राज्य और संघीय न्यायालयों में अपवर्जित करने की अनुशास्ति (सैन्कशन) को लागू किया जाए।[4] यह नियम "विषाक्त वृक्ष के फल" अर्थात् अवैध तलाशी और अभिग्रहण द्वारा प्राप्त जानकारी का उपयोग करके प्राप्त साक्ष्य पर भी लागू होता है[5]। यह मौखिक और

---

1. **माप बनाम ओहिओ** (1961) 367 यू० एस० 643।
2. **रोचिन बनाम कैलिफोर्निया** (1952) 342 यू० एस० 165।
3. **बायड बनाम युनाइटेड स्टेट्स** (1896) 116, यू० एस० 616; **एडम्स बनाम न्यूयार्क** (1904) 192 यू० एस० 585।
4. **वीक्स बनाम युनाइटेड स्टेट्स** (1914) 232 यू० एस० 383 **वुल्फ बनाम कोलोरेडो** 338 यू० एस० 25, **माप बनाम ओहियो** (1961) 367 यू० एस० 643।
5. **सिल्वरथोन लम्बर कं० बनाम युनाइटेड स्टेट्स** (1926) 251 यू० एस० 985।

वास्तविक दोनों प्रकार के साक्ष्य पर लागू होता है, उदाहरण के लिए किसी मकान की दीवार में लगाए गए माइक्रोफोन के जरिए सुने गए कथनों पर[1] या किसी विधिविरुद्ध तलाशी के दौरान पुलिस से किए गए कथनों पर भी लागू होता है[2]। अभी हाल ही में इसके विस्तार का एक और अधिक ज्वलन्त उदाहरण इस अभिनिर्धारण में मिलता है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि तार में जोड़ लगाकर सुनना (वायरटेपिंग) और घात लगाकर सुनना (ईव्सड्रापिंग) भी "तलाशी और अभिग्रहण" के अन्तर्गत आता है[3]।

किन्तु अमेरिकी नियम की सीमाएं हैं जिनमें कुछ तो काफी पुरानी हैं और अन्य अभी हाल की हैं।

कोई अभियुक्त इस नियम की दुहाई उस दशा में नहीं दे सकता जब कि साक्ष्य किसी दूसरे व्यक्ति के अधिकारों को भंग करके प्राप्त किया गया था[4]। यह नियम राज्य पदाधिकारी के बजाय किसी प्राइवेट व्यष्टि द्वारा किए गए भंग से प्राप्त साक्ष्य को लागू नहीं होता है[5]। यह नियम फेडरल ग्रांडजूरी के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य को लागू नहीं होता है[6]। यह ऐसे साक्ष्य को लागू नहीं होता है जिसे दोष से प्रासंगिक रूप में संबद्ध विवाद्यक के बारे में ग्रहण किया गया हो, जैसे अभियुक्त की साक्षी के रूप में विश्वसनीयता[7]। पांचवें और चौदहवें संशोधनों की ये अपेक्षाएं कि संघीय या राज्य सरकार "किसी व्यक्ति को उसके जीवन, स्वतंत्रता या संपत्ति से विधि की सम्यक् प्रक्रिया (ड्यू प्रोसेस आफ ला) के बिना वंचित नहीं कर सकती", ऐसे साक्ष्य को अपवर्जित कर सकती है जो उन तरीकों से प्राप्त किया गया हो जो कोई अपराध सशक्त ढंग से रोकने के बारे में नाजुक तुनुकमिजाजी या व्यक्तिगत भावना को अधिक आघात पहुंचाते हैं अर्थात् ऐसे तरीके जो "अन्तःकरण या सद्विवेक को आघात पहुंचाते हैं"। उदाहरण के लिए अभियुक्त द्वारा निगली गई किसी औषधि को निकालने के लिए उसके पेट को जबरदस्ती पम्प करना[8]। ऐसी विधि का भंग करके, जो संवैधानिक अधिकारों का अतिलंघन नहीं करते, प्राप्त साक्ष्य सामान्य रूप से ग्राह्य है[9]।

अमेरिका में आलोचना।

7.19. अमेरिका में अपवर्जनकारी नियम पर विवाद चलता रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं की आम जनता इसे विधि की 'तकनीकियों' में से एक ऐसी तकनीक मानती है जो पुलिस पर बन्धन लगाती है और अपराधियों को छुड़वा देती है। किन्तु विद्वान व्यक्ति और न्यायाधीश भी इसकी आलोचना करते हैं। डालिन एच० ओक्स ने एक प्रमुख लेख में यह निष्कर्ष निकाला है कि यह नियम पुलिस को अवचार करने से भयभीत नहीं करता है और यह विधि प्रवर्तनक अधिकारियों को मिथ्या परिसाक्ष्य का संदर्धन करने पर नकारात्मक प्रभाव डालता है, दाण्डिक कार्यवाहियों में बहुत विलम्ब करता है और उन्हें बोझिल बना देता है तथा प्रतिवादी (अभियुक्त) के दोष या निर्दोष होने की सचाई का पता लगाने

---

1. **सिल्वरमैन** बनाम **युनाइटेड स्टेट्स** (1961) 365 यू० एस० 505।
2. **योग सन** बनाम **युनाइटेड स्टेट्स** (1963) 371 यू० एस० 471।
3. **काटज** बनाम **युनाइटेड स्टेट्स** (1967) 389 यू० एस० 347, **युनाइटेड स्टेट्स** बनाम **व्हाइट** (1971) 401 यू० एस० 745।
4. **अल्डरमैन** बनाम **युनाइटेड स्टेट्स** (1969) 394 यू० एस० 1951 तुलना कीजिए **पीपुल** बनाम **मार्टिन** (1955) पृ० सैकेंड 855।
5. **बुर्डियो** बनाम **मैकडावेल** (1921) 256 यू० एस० 465यह उस विरोधाभासी सिद्धान्त को कायम रखने के लिए प्रतीत होता है जो "सिलवर पैटर्न" सिद्धान्त वाले प्राइवेट व्यक्तियों के लिए है और जिसे **एलकिंस** बनाम **युनाइटेड स्टेट्स** (1900) 364 यू० एस० 206 में नामंजूर कर दिया गया था और जिस सिद्धान्त के आधार पर ऐसे साक्ष्य को जो राज्य अधिकारियों द्वारा अवैध रूप से प्राप्त हो, संघीय न्यायालयों (फेडरल कोर्ट्स) में उपयोग किया जा सकता था।
6. **युनाइटेड स्टेट्स** बनाम **कैलेंड्रा** (1974) 414 यू० एस० 338।
7. **वाल्डर** बनाम **युनाइटेड स्टेट्स** (1954) 347 यू० एस० 62।
8. **रोचिन** बनाम **कैलिफोर्निया** (1952) 342 यू० एस० 165 पृ० 172।
9. **सिल्वर** बनाम **युनाइटेड स्टेट्स** (1958) 357 यू० एस० 301।

पर से ध्यान हटा देता है। किन्तु इन कमियों और अहितकर बातों के होते हुए भी औक्स ने इस नियम को तब तक समाप्त करने के लिए नहीं कहा है "जब तक कि इसके स्थान पर कोई दूसरा नियम न हो ——————————। यदि अनुचित तलाशी और अभिग्रहण के विरुद्ध गारंटी का उल्लंघन किसी व्यवहारिक परिणाम के किया जा सकेगा तो वह असहनीय होगा।"

7.20. ओक्स ने अपवर्जनकारी नियम के स्थान पर "एक ऐसे प्रभावकारी अपकृत्य संबंधी उपाय (कार्रवाई) का सुझाव दिया है जो अपराध करने वाले अधिकारी या उसके नियोजक के विरुद्ध किया जा सके——————————[2]। अपकृत्य संबंधी उपाय अपवर्जनकारी नियम की संकुचित परिधि को तोड़ कर बढ़ा सकता है और ऐसा व्यवहारिक उपाय प्रदान कर सकता है जिसका प्रत्यक्ष रूप से भयभीत करने वाला प्रभाव पुलिस पर पड़ेगा चाहे क्षतिग्रस्त पक्षकार का अभियोजन किया गया हो या न किया गया हो।"

7.21. चीफ जस्टिस बरजर ने **विवेन्स बनाम सिक्स अननोन नेम्स एजेंट्स**[3] के मामले में (विसम्मति प्रकट करते हुए) यही दृष्टिकोण अपनाया था। यद्यपि उसके अपवर्जनकारी नियम का विरोध किया था किन्तु वह उपर्युक्त रूप में इस बात से सहमत था कि जब तक कोई सार्थक विकल्प का विकास नहीं किया जा सकता तब तक इसे नहीं छोड़ा जाएगा। उसने यह सिफारिश की कि "कांग्रेस को सरकार के हो विरुद्ध ऐसा कोई प्रशासनिक या अर्द्ध प्रशासनिक उपाय विकसित करना चाहिए जो ऐसे व्यक्तियों को जिनके उन अधिकारों का जो उन्हें चौथे संशोधन द्वारा प्रदत्त हैं, उल्लंघन हुआ है, प्रतिकर दिलाए और ऐसे अधिकारों को प्रतिस्थापित करे।"

अमेरिकी स्थिति के सम्बन्ध में अभी हाल ही में किया गया विचार विमर्श।

7.22. तलाशी और अभिग्रहण के संदर्भ में बढ़ते हुए अपवर्जनकारी नियम संबंधी विवाद के अन्तर्गत ऐसे महत्वपूर्ण विवाद्यकों और बातों पर अभी हाल ही में एंग्लो अमेरिकन ला रिव्यू के एक लेख में परीक्षण किया गया है।[4] इस लेख में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट अपवर्जनकारी नियम को समाप्त करके बुद्धिमानी का काम नहीं करेगा। इसमें यह बताया गया है कि यद्यपि अपवर्जनकारी नियम जनता की नजरों में न्यायापालिका की ईमानदारी का संरक्षण नहीं करता है फिर भी यह पुलिस अधिकारियों के दिमाग में न्यायालय और विधि के प्रति विश्वसनीयता का समर्थन करता है। इसके अलावा इस लेख के अनुसार यह विश्वास करने का अच्छा कारण विद्यमान है कि अपवर्जनकारी नियम अपराधियों को निर्दोष मुक्त करने की इतनी इजाजत नहीं देता है जितना कि प्रत्यक्ष अनुशास्तियों को लागू करने की दशा में होता। इसके साथ ही इस लेख में यह दिखाया गया है कि संविधान के उल्लंघन में प्राप्त साक्ष्य का अपवर्जन पुलिस द्वारा अवैध तलाशियां लेने में उचित निवारक का काम करता है। इस लेख के अनुसार यद्यपि विद्वानों ने इस नियम के औचित्य के बारे में सन्देह प्रकट किया है फिर भी पुलिस उस न्यायालय की बात समझ नहीं सकेगी या उस न्यायालय का आदर नहीं करेगी जिस न्यायालय ने अपना दृष्टिकोण ऐसी बात के बारे में, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होता है, बदल दिया हो। अमेरिका को संवैधानिक परम्परा ऐसी है कि पुलिस इस बात पर विश्वास करने में कठिनाई होगी कि कोई सभ्य सरकार विधि के उल्लंघन से लाभ उठाना चाहती है।

---

1. डालिन एच० ओक्स "स्टडिंग दि एक्सक्लूजनरी रूल इन सर्च एण्ड सीजर" (1970) 37 यूनिवर्सिटी आफ शिकागो ला रिव्यू 665। "प्रिटचेटका" दि अमेरिकन कन्स्टीट्यूशन (1977) पृष्ठ 438 देखिए।
2. डालिन एच० ओक्स "स्टडिंग दि एक्सक्लूजनरी रूल इन सर्च एण्ड सीजर" (1970) 37 यूनिवर्सिटी आफ शिकागो एल० आर० 165।
3. **विवेन्स बनाम सिक्स अननोन नेम्स एजेंट्स** (1971) 403 यू० एस० 388।
4. लोआवंथल "इवेल्यूएटिंग दि एक्सक्लूजनरी रूल इन सर्च एण्ड सीजर" (1980) खंड 9, सं० 3 एंग्लो अमेरिकन ला रिव्यू पृष्ठ 238 से 256 तक।

अध्याय 8

जमाइका का एक मामला

जमाइका से प्रिवी कौंसिल में मामला।

8.1. जमाइका से की गई एक अपील पर प्रिवी कौंसिल का एक रोचक विनिश्चय है जो अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य से संबंधित संवैधानिक उपबंध के प्रभाव के बारे में एक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। प्रिवी कौंसिल ने[1] अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के विषय पर साधारणतया और जमाइका के संविधान में तलाशी और अभिग्रहण के प्रभाव के बारे में विचार किया। इस विनिश्चय में स्काटलैंड और इंगलैंड के अनेक सुसंगत मामलों पर विचार विमर्श किया गया।

सभी सम्बद्ध परिस्थितियों को दृष्टि में रख कर अनौचित्यता का निर्णय किया जाना।

8.2. प्रश्नगत साक्ष्य अभियुक्त की अवैध तलाशी लेकर प्राप्त किया गया था। प्रिवी कौंसिल ने इस संदर्भ में लार्ड पार्कर के निम्नलिखित कथन पर विचार विमर्श किया जो अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य का अपवर्जन करने के न्यायिक विवेकाधिकार के बारे में था—"यदि सता करके, मिथ्या व्यपदेशन कर के, चालाकी से, धमकी देकर, रिश्वत जैसी कोई चीज देकर साक्ष्य प्राप्त किए जाने का कोई संकेत किया गया है तो ऐसे साक्ष्य को अपवर्जित करने के विवेकाधिकार का प्रयोग निश्चय ही किया जाएगा।"[2]

प्रिवी कौंसिल के विनिर्णय (रूलिंग) का संवैधानिक पहलू।

8.3. किंतु संवैधानिक विवाद्यकों के बारे में प्रिवी कौंसिल के उपर्युक्त विनिर्णय की विशिष्ट सुसंगति इस तर्क का निपटारा करने से है कि जब अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य अभियुक्त के संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करके प्राप्त किया गया था तब उसे जमाइका के संविधान के अधीन अपवर्जित किया जाना चाहिए था। लार्ड हाउशन ने इस तर्क का निपटारा संक्षेप में इस प्रकार किया था:—

"संवैधानिक अधिकार को लिखित संविधान में प्रतिष्ठापित किया गया हो या न किया गया हो, किन्तु लार्ड शिप्स को ऐसा प्रतीत होता है कि इस बात का कोई महत्व नहीं है यह ऐसे प्रतिष्ठापन पर आधारित है या केवल कामन ला पर आधारित है जैसा कि इस देश में होता है। दोनों में से किसी भी स्थिति में न्यायालय के विवेकाधिकार का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए और लिखित रूप में इस अधिकार की घोषणा से इसे छीन नहीं लिया गया है।"

अध्याय 9

कार्य संचालन पत्र के बारे में प्राप्त आलोचनाएं

प्राप्त आलोचनाएं—सामान्य रूप से उनका वर्णन।

9.1. भारत में और अन्यत्र विधिक स्थिति की चर्चा करने के पश्चात् अब हम इस विषय के बारे में प्राप्त राय का उल्लेख कर रहे हैं। इस विषय के बारे में आयोग द्वारा तैयार किया गया एक कार्य संचालन पत्र फरवरी, 1983 में हितबद्ध व्यक्तियों और निकायों को परिचालित किया गया था जिनके अन्तर्गत सचिव, विधायी विभाग, विधि मंत्रालय, सभी उच्च न्यायालय, सभी राज्य सरकारें और विधिज्ञ संघ (बार एसोसिएशंस) भी हैं। उनसे 15 अप्रैल, 1983 तक अपनी आलोचनाएं भेजने का अनुरोध किया गया था। आयोग ने अपने विचारों को अन्तिम रूप देने से पहले उन सभी आलोचनाओं पर ध्यान दिया है जो 15 सितंबर, 1983 तक प्राप्त हो चुकी थीं।

तीन उच्च न्यायालयों, चार राज्य सरकारों, उच्च न्यायालयों के दो रजिस्ट्रारों (उनके व्यक्तिगत विचार), एक अतिरिक्त मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट और एक महिला

---

1. किंग बनाम दि क्वीन (1978) 2 ए० ई० आर० 610 (पी० सी०)।
2. कालिस बनाम गन (1964), 1 क्यू बी 495, 502।

अधिवक्ता (एडवोकेट) से उत्तर प्राप्त हुए हैं। हम इस बात के लिए सभी के आभारी हैं कि उन्होंने प्रश्नावली का उत्तर भेजा। यहां हम इन आलोचनाओं में उठाए गए कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों की चर्चा करेंगे।

उच्च न्यायालय।

9.2. तीन उच्च न्यायालयों ने कार्य संचालन पत्र का उत्तर भेजा है—

(i) एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के पास इस विषय पर अपना विचार व्यक्त करने के लिए कुछ नहीं है।[1]

(ii) एक दूसरा न्यायालय[2] वर्तमान विधि को न्यायसंगत और उचित मानता है और इसमें सुधार करने को आवश्यक नहीं समझता।

(iii) जहां तक तीसरे न्यायालय का संबंध है, उसके नौ न्यायाधीशों के पास विचार व्यक्त करने के लिए कुछ नहीं है। शेष न्यायाधीशों ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की है।[3]

राज्य सरकारें।

9.3. चार राज्य सरकारों ने कार्य संचालन पत्र के बारे में अपनी आलोचनाएं भेजी हैं।[4] इन चार सरकारों में से दो सरकारें उस संशोधन के प्रस्ताव के पक्ष में हैं (जो कार्य संचालन पत्र में बताए गए हैं) और जहां तक उनका संबंध न्यायालय को विवेकाधिकार प्रदान करने से है, तीसरी राज्य सरकार का विचार है कि इस समय भी ऐसा विवेकाधिकार विद्यमान है और किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है। चौथी सरकार कोई भी संशोधन करने के विरोध में है और इसके लिए उसने यह कारण बताया है कि ऐसा करने से कई समानान्तर जांच होने लगेंगी जो वांछनीय नहीं हैं।

अन्य आलोचनाएं।

9.4. एक उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार ने सम्भवतः अपने व्यक्तिगत विचार व्यक्त करते हुए इस बात से सहमति प्रकट की है कि एक ऐसा कानूनी संशोधन आवश्यक है जैसा कि कार्य संचालन पत्र में न्यायालय को विवेकाधिकार प्रदान किए जाने का प्रस्ताव है।[5]

एक दूसरे उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार (अपील पक्ष) ने पुनः सम्भवतः अपने व्यक्तिगत विचार व्यक्त करते हुए संशोधन का यह सोच कर विरोध प्रकट किया है कि न्यायपालिका में भी विवेकाधिकार विनिहित करने से "इसका पतन मनमानी करने की हो जाएगी"। किन्तु उसने अपने उत्तर के दूसरे पैरा में यह कथन किया है कि मानवधिकारों के उल्लंघनों को विधि में सुझाए गए परिवर्तनों की अपेक्षा "न्यायिक सतर्कता" द्वारा अधिक प्रभावकारी रूप में रोका जा सकता है।[6] इस संदर्भ में यह बता देना चाहिए कि इस रिपोर्ट में जो सिफारिशें की जाने वाली हैं उनमें "न्यायिक सतर्कता" की ही बात वास्तव में सोची गई है।[7]

उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार (अपील पक्ष) द्वारा की गई आलोचनाओं में यह आशंका व्यक्त की गई है कि ऐसे साक्ष्य को अपवर्जित करने के न्यायिक विवेकाधिकार से अपराधियों को सहायता मिलेगी।[8] किन्तु हमें यह नोट करके प्रसन्नता है कि इस दृष्टिकोण के विपरीत

---

1. विधि आयोग की फाइल सं० एफ० 2(7) 83-एल० सी० क० सं० 4।
2. विधि आयोग की फाइल सं० एफ० 2(7) 83-एल० सी० क० सं० 8।
3. विधि आयोग की फाइल सं० एफ० 2(7) 83–एल० सी० क० सं० 10।
4. विधि आयोग की फाइल सं० एफ० 2(7) 83-एल० सी० क० सं० 11।
5. विधि आयोग की फाइल सं० एफ० 2(7) 83-एल० सी० क० सं० 9।
6. विधि आयोग की फाइल सं० एफ० 2(7) 83-एल० सी० क० सं० 2।
7. आगे अध्याय 11।
8. विधि आयोग की फाइल सं० एफ० 2(7) 83 एल० सी० क० सं० 2।

पक्ष को एक अतिरिक्त मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट ने सही ढंग से प्रस्तुत किया है। उसने अपने द्वारा की गई आलोचना में निम्नलिखित कथन किया है।[1]

"यदि न्यायालय अवैध या अनुचित तरीकों से साक्ष्य के संग्रह किए जाने की अनदेखी कर देते हैं तो जनता की नजरों में न्यायिक प्रक्रिया की विशुद्धता में विश्वास घट जाता है.....। यदि अवैध या अनुचित रूप में प्राप्त साक्ष्य को पूर्ण रूप में ग्रहण करने का नियम लागू किया जाता है तो इस बात का खतरा बना रहेगा कि इस प्रकार का साक्ष्य प्राप्त करने में पुलिस के आचरण की संवीक्षा न्यायालयों में बहुत कम बार हो। प्रतिपरीक्षा करने वाले काउंसेल इस स्थिति को स्वीकार कर लेंगे और उनके संदेहात्मक तरीकों के बारे में प्रश्न न पूछेंगे।"

उक्त मजिस्ट्रेट ने अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य को, ऐसी स्थिति में, जब अवैधता स्तब्ध करने वाली प्रकृति की हो, अपवर्जित करने का विवेकाधिकार न्यायाधीश को प्रदान किए जाने का पूरी तरह से समर्थन किया है।

उसने प्रस्तावित धारा 166क के बारे में अपनी पूर्ण सहमति व्यक्त करने के अलावा यह भी सुझाव दिया है कि कपट, प्रवंचना (धोखा) या चालाकी से प्राप्त साक्ष्य को अग्राह्य कर दिया जाना चाहिए और इस प्रयोजन के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 29 का संशोधन कर देना चाहिए।[2]

प्रस्ताव को केवल अपराधिक मामलों के बारे में लागू करने तक सीमित रखना।

9.5. अब हमें बम्बई उच्च न्यायालय की एक अधिवक्ता (एडवोकेट) और इंग्लैंड के सुप्रीम कोर्ट की सालिसिटर श्रीमती फिरोजा द्वारा उठाए गए प्रश्न पर ध्यान देना चाहिए।[3] उन्होंने यह प्रश्न उठाया है कि क्या प्रस्तावित उपबन्ध को केवल आपराधिक मामलों में लागू करने तक सीमित रखने का यह अर्थ नहीं होगा कि सिविल मामलों में विधि इस अवैधता को सहन करती है।

इस संदर्भ में हम यह बताना चाहेंगे कि यह प्रस्ताव अवैधता के बारे में एक और अनुज्ञप्ति बनाने के लिए ही है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अवैधता को ही माफ किया जा रहा है। इस समय भी ऐसा अवैध आचरण के लिए, जो अपराध या अपकृत्य (टार्ट) में तुल्य है, समुचित उपाय का अनुसरण किया जा सकता है और इस उपाय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह प्रस्ताव उस उपाय में केवल एक और अनुज्ञप्ति जोड़ता है।

कोई व्यक्ति तर्कसंगत रूप से यह सुझाव दे सकता है कि ऐसे आपराधिक मामलों के लिए, जिनमें प्राण और स्वतंत्रता का प्रश्न सिविल मामलों की अपेक्षा बहुत बार उठता है, एक विशेष उपबन्ध होना चाहिए। अनुभव से यह भी दर्शित होता है कि ऐसी गम्भीर अवैधता या अनौचित्य, जो न्यायिक अन्तःकरण को स्तब्ध करती है, करने के अवसर आपराधिक अन्वेषणों से सम्बद्ध विचारण से पूर्व प्रक्रियाओं के सिविल मामलों की प्रारम्भिक कार्यवाहियों की अपेक्षा अधिक बार उत्पन्न होते हैं। इसलिए इस विषय के संबंध में उपबन्ध की आवश्यकता सिविल मामलों की अपेक्षा आपराधिक मामलों में अधिक बलशाली है अर्थात् अधिक महत्व रहती है।

विद्यमान विधि के बारे में कही गई कुछ बातें।

9.6. कार्य संचालन पत्र के बारे में प्राप्त कुछ आलोचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें यह उपधारणा की गई है कि अवैध रूप से उपाप्त साक्ष्य को अपवर्जित करने

1. विधि आयोग की फाइल सं० एफ० 2(7)/83 एल० सी० क्र० सं० 2 (क्र० सं० 2 के साथ दो आलोचनाएं प्राप्त हुई थीं)।
2. विधि आयोग फाइल सं० एफ० 2(7)/83-एल० सी० क्र० सं० 2।
3. विधि आयोग की फाइल सं० एफ० 2(7)/83-एल० सी० क्र० सं० 1।

का विवेकाधिकार न्यायालयों में विद्यमान विधि के अधीन पहले से ही निहित है[1]। किन्तु यह एकदम सही उपधारणा नहीं प्रतीत होती है। हमने पिछले अध्याय में इस पर विचार विमर्श किया है और यह बताया है कि[2] किसी भी भारतीय विनिश्चय में—1973 के उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) के विनिश्चय में भी जिसका ऐसी उपधारणा के लिए कभी-कभी सहारा लिया जाता है—अवैध रूप से संग्रहित साक्ष्य को नामंजूर करने के लिए अवैधता को आधार नहीं माना गया है।

अवैधता और अनियमितता।

9.7. कार्य संचालन पत्र के संबंध में कुछ आलोचनाओं में यह तर्क किया गया है साक्ष्य के ग्रहण के विषय में भारतीय विधि अवैधता और अनियमितता के बीच अंतर पहले से ही करती है। इन आलोचनाओं में यह उपधारणा की गई है कि जहां अवैधता किसी दोष या अपराध के अन्वेषण की जड़ में है वहां मामले के विचारण में साक्ष्य अपवर्जित किए जाने के योग्य है। किन्तु यह उपधारणा अनेक विनिश्चयों में परिलक्षित न्यायिक दृष्टिकोण से मेल नहीं खाती। वस्तुतः उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है[3] कि साक्ष्य प्राप्त करने में अवैधता के कारण उसे अपवर्जित नहीं किया जा सकता। संभवतः कुछ भ्रम इस बात से पैदा हुआ है कि **आपराधिक मामले के विचारण में अवैधता दोष-सिद्धि को अभिखंडित (मंसूख) करने का एक आधार हो सकती है** जब कि इसके विपरीत केवल अनियमितताओं के आधार पर ऐसा नहीं किया जा सकता। इसका यह अर्थ नहीं है कि साक्ष्य संग्रह करने में अवैधता के कारण उस साक्ष्य का प्रयोग विचारण में अपवर्जित किया जा सकता है।

प्रक्रिया के प्रश्नों का विनिश्चय अधिकांश रूप से इस जैसे विचारणीय आधार पर किया जाता है कि प्रदान की जाने वाली प्रक्रियात्मक सुरक्षा आज्ञापक (मैनडेटरी) या निदेशात्मक ढंग की है। वर्तमान जांच का सरोकार एक दूसरे पहलू से है—वह यह है क्या विधि प्रवर्तक अधिकारी का कदाचार ऐसा है कि न्यायालय को अपनी ओर से उसकी मदद नहीं करनी चाहिए और साक्ष्य ग्रहण किए जाने से अपवर्जित करके इसे निरुत्साहित करना चाहिए। विशेष या ठोस मामलों में कुछ विचारणीय आधार एक दूसरे को अति व्याप्त कर सकते हैं किन्तु इस सिद्धान्त या नीति पर विचार करना आवश्यक है और जो वर्तमान रिपोर्ट में अनुध्यात परिस्थितियों में साक्ष्य का अपवर्जन करने के लिए न्यायोचित्य आधार प्रदान कर सकता है वह कानूनी उपबंध के आज्ञापक ढंग का होने या आज्ञापक ढंग का न होने पर ध्यान आकृष्ट किए जाने से सर्वथा भिन्न है।

अध्याय 10

पक्ष और विपक्ष में तर्क

अनेक तर्कों का संक्षेप।

10.1. इस प्रश्न पर समुचित विनिश्चय करने के लिए कि विचाराधीन विषय के संबंध में भारत की विधि में संशोधन करने की आवश्यकता है या नहीं यहां ऐसे संशोधन के पक्ष या विपक्ष में तर्कों का उल्लेख करा देना सुविधाजनक होगा। अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य का अपवर्जन करने के लिए न्यायालय को सशक्त करने वाले नियम अपनाने के समर्थन में महत्वपूर्ण नीति संबंधी तर्कों का संबंध भय उत्पन्न करने के तत्व, नैतिक तर्क, अभियुक्त के प्रति अन्याय होने के तर्क, न्यायिक प्रक्रिया का सत्यनिष्ठ या विश्वसनीय होने के तर्क और विधि के सामंजस्य तथा विकास के तर्क से है।

---

1. भारत के विधि आयोग की फाइल सं० एफल 2(7)/83 ए०सी० क० सं० 1 (श्रीमती फिरोजा एक्ले-सरिया, अधिवक्ता) (एडवोकेट)।
2. पिछला पैरा 3.6।
3. (क) आर० एम० मलकानी बनाम महाराष्ट्र राज्य ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 153।
   (ख) सागराज बनाम आर० के० बिरला, ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 1295।

भयोत्पादक।

10.2. अपवर्जन के नियम को न्यायोचित ठहराने के लिए जो लोग भय उत्पन्न करके ऐसे साक्ष्य के प्राप्त किए जाने पर रोक लगाने के लिए तर्क देते हैं वे इस बात पर जोर देते हैं कि विधि का प्रवर्तन करने में अवैध आचरण के विरुद्ध कारगर रूप से भय उत्पन्न करने का उपबंध विधि में होना आवश्यक है। यह कहा जाता है कि विधि के प्रवर्तन में ऐसा आचरण न किए जाने के लिए विधि के क्षेत्र में एकमात्र कारगर उपाय के लिए एक ऐसे नियम का होना आवश्यक है जो अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य का अपवर्जन करता हो। अमेरिका में अपनाया गया अपवर्जनकारी कड़ा नियम इस उपधारणा के आधार पर आधारित है किन्तु इसमें संदेह नहीं कि उस देश में इस नियम के अपनाए जाने में इस तथ्य से प्रोत्साहन मिला है कि इसमें विवाद का प्रश्न संवैधानिक उपबंध के उल्लंघन का है।

भयोत्पादक प्रभाव को अवधारित करने में कठिनाई।

10.3. अपराध विज्ञान के विद्यार्थी यह बात जानते हैं कि किसी विधिक अनुशास्ति के प्रभाव का उचित रूप से ठीक-ठीक पता लगाना कठिन है। मानवीय क्रियाकलापों के विशेष क्षेत्र में अवैध आचरण को रोकने में भय उत्पन्न करके उसे रोकने के लिए किसी विधिक निर्देशात्मक आदेश का कितना पर्याप्त प्रभाव पड़ता है इस बात के बारे में अलग-अलग राय हो सकती है। इस सामान्य स्थिति के कारण (जो अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को भी लागू होती है) यह प्रश्न कि ऐसे साक्ष्य का अपवर्जन करने का नियम या विवेकाधिकार साक्ष्य संग्रह किए जाने में अवैध आचरण रोकने में भय उत्पन्न करता है या नहीं एक ऐसा विषय बना रहेगा जिसके बारे में सदैव अलग-अलग राय होगी। इस विषय पर वस्तुनिष्ठ निष्कर्ष (आबजेक्टिव कान्क्लूजन) निकालने के लिए सामग्री सदैव उपलब्ध नहीं है। इसके साथ ही यह भी बात है कि अपवर्जन करने के नियम या विवेकाधिकार को अपनाए जाने से प्रथमदृष्ट्या प्रभाव यह पड़े कि ऐसे साक्ष्य प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए विधि भंग करने की प्रेरणा समाप्त हो सकती है। आपराधिक अनुशास्तियों का मुख्य आधार भयोत्पादन रहा है और इस बात के पक्ष में यह उपधारणा होनी चाहिए कि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को उपाप्त करने के प्रयास के विरुद्ध न्यायिक रूप से प्रवर्तनीय अनुशास्तियों का प्रभाव हितकर है। ऐसा प्रतीत होता है कि अमेरिका में अपवर्जनकारी नियम के भयोत्पादक प्रभाव का परीक्षण कराने के प्रयोजन के लिए जो अध्ययन किए गए।[1] वे अनिश्चित रहे हैं और उनके अनिश्चित बने रहने की संभावना है। मिस्टर जस्टिस फ्रैंकफर्टर के अनुसार "विवाद्यकों का मात्रात्मक हल निकाला जाना संभव नहीं है"।[2] वस्तुतः यह अनेक ऐसी अन्य विधियों के बारे में भी सच है जो आपराधिक अनुशास्तियां अधिरोपित करती हैं। जहां ऐसी प्रत्येक विधि के जिससे विनिर्दिष्ट भयोत्पादक प्रभाव दर्शित करने की अपेक्षा की जाती है, प्रतिपादक यह बात कहते हैं वहां यह संदेह हो जाता है कि इससे हमारी विधि का बहुत बड़ा अंश पुस्तकों में से हटा देना पड़ेगा।[3]

इस विषय का एक दूसरा पहलू भी है जिसका उल्लेख करना आवश्यक है। अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित करने के नियम के क्रियान्वयन से सत्य का पता लगाने की प्रक्रिया में बाधा पड़ सकती है। वैयक्तिक मामलों में दोषी व्यक्ति छूट भी सकते हैं। प्रश्न यह है कि क्या ऐसे मामले संख्या में इतने अधिक होंगे जिससे यद्यपि न्याय के हित में परिवर्तन करना अन्यथा अपेक्षित है तो भी विधि में परिवर्तन करने का कोई उपाय रुक जाए।

वैकल्पिक उपाय।

10.4. भयोत्पादकता के तर्क की वैधता और बल का निर्धारण करने में ऐसे वैकल्पिक उपायों की बात स्वाभाविक रूप से विचारणीय हो जाती है जो अवैध आचरण के विरुद्ध

---

1. जे० बी० डाउसन "एक्सक्लूजन आफ अनलाफुली आबटेन्ड एविडेन्स" (जुलाई, 1982) 1 आई० सी० एल० क्यू० 513, 520, 521, 522।
2. वोल्फ बनाम कोलोरेडो (1949) 338 यू० एस० 26, 28।
3. जे० बी० डाउसन, "एक्सक्लूजन आफ अनलाफुली आबटेन्ड एविडेंन्स" (जुलाई, 1982) आई० सी० एल० क्यू० 513, 520, 522।

1. तुलना कीजिए सन्दरलैन्ड-"एक्सक्लूजनरी रूल्स : ए रिक्वायरमेन्ट आफ कन्स्टीट्यूशनल प्रिन्सपल्स" (1878) 60 जर्नल आफ क्रिमिनल ला एण्ड क्रिमिनालाजी, 141।

साधारण विधि के अधीन उपलब्ध हैं। ऐसे वैकल्पिक उपाय इस समय मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं :—

(क) प्रश्नगत आचरण के लिए आपराधिक अनुशास्तियां जहां विधि में ऐसी अनुशास्तियां उपलब्ध हैं ;

(ख) अपकृत्य (टार्ट) संबंधी उपाय, जहां इन्हें ऐसे आचरण के लिए विधि में मान्यता प्राप्त है, और

(ग) प्रवर्तनकारी एजेन्सियों के विरुद्ध विभागीय कार्रवाई।

सैद्धांतिक रूप से, उपर्युक्त वर्णित अनुशास्तियां उपलब्ध हो सकती हैं किन्तु कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां हैं जिन्हें नजर अंदाज नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए, आपराधिक अनुशास्तियों के संबंध में अवैध तलाशी के शिकार व्यक्ति के लिए ऐसी अनुशास्तियों को कारगर रूप से लागू कराना आसान नहीं हो सकता क्योंकि वह स्वयं अपने साधनों से इस प्रयोजन के लिए पर्याप्त साक्ष्य इकट्ठा न कर सके। इसके अलावा कुछ विधिक पूर्व-अपेक्षाएं भी हैं, जैसे अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी की आवश्यकता जो अवश्य पूरी की जानी चाहिए। व्यवहार में, इन विधिक रुकावटों को पार करना आसान नहीं है।

विधिविरुद्ध तलाशी और अभिग्रहण के विरुद्ध सिविल कार्रवाई के उपाय में भी समान रूप से बदनाम व्यवहारिक कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। लार्ड डेनिंग, एम० आर०[1] ने लिखा था कि किसी मकान में चुपके से या बलपूर्वक प्रवेश करते समय "पुलिस अतिचार (ट्रेसपास) के लिए कार्रवाई की जाने का जोखिम उठाती है। यह बड़ी जोखिम नहीं है।"

इसके अलावा, अनुशासनिक कार्रवाई के बारे में विलम्बकारी और कष्टप्रद प्रक्रिया है जिसके कारणों को बताना वर्तमान प्रयोजन के लिए आवश्यक नहीं है। इस तरह से ऐसी बहुत सी प्रतिसंतुलनात्मक विचारणीय बातें हैं जो वैकल्पिक उपायों के व्यवहारिक परिणाम को नगण्य बना देती हैं। तब किसी व्यक्ति को प्रचलित विधिक उपायों की सीमाओं और वैधता के स्तर को कायम रखने के लिए उनकी असमर्थता का ही सामना करना पड़ता है।

नैतिकता का तर्क "निर्दोषता का सिद्धान्त"।

10.5. यहां तक तो भयोत्पादक उपाय के तत्व के बारे में चर्चा हुई। अब एक और बात की चर्चा की जाए जिसे "नैतिकता" का तर्क कहा जा सकता है। जो लोग कुछ प्रकार के अपवर्जनकारी नियम के पक्ष में होंगे वे इसके समर्थन में यह तर्क देंगे कि न्याय से यह अपेक्षा की जाती है कि जो व्यक्ति दोषकर्ता है उसे अपने दोषपूर्ण कार्य का फायदा अवश्य ही नहीं मिलना चाहिए। इसे "निर्दोषता" का सिद्धांत कह सकते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य का अपवर्जन उस व्यक्ति को, जिसने अवैध रूप से साक्ष्य प्राप्त किया है, ऐसा फायदा उठाने से वंचित करने के विरुद्ध अनुशास्ति के रूप में कार्य करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आधुनिक राज्य में जहां विधि का प्रवर्तन एक जटिल या पेचीदा तरीका है, यह तर्क जिस रूप में वैयक्तिक आचरण पर ध्यान केन्द्रित करता है, शब्दशः लागू नहीं किया जा सकता। वह विशिष्ट प्रवर्तन अधिकारी, जो अभिकथित दोष के लिए वैयक्तिक रूप से दोषी रहा हो, प्रशासनिक ढांचे में केवल एक छोटे अवरोध की तरह हो। इसके अलावा यह बात भी है कि वह विशिष्ट अधिकारी किसी दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर दिया गया हो और अभियोजन प्रारंभ होने से पहले तथा वह साक्ष्य, जिसके बारे में अवैध रूप से प्राप्त किए जाने का अभिकथन किया गया है, प्रस्तुत किए जाने से पहले उसके स्थान पर कोई दूसरा अधिकारी उसके उत्तराधिकारी के रूप में आ गया हो। इसका परिणाम यह हुआ कि यद्यपि 'क' ने दोष किया और अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य का फायदा 'ख' को मिल सकता है और वैयक्तिक त्रुटि या कसूर पर

1. घानी बनाम जोन्स (1970) 1 क्वी० बी० 693, 705।

आधारित 'निर्दोषिता' के सिद्धांत को लागू करना ऐसी परिस्थितियों में निरर्थक हो जाएगा। फिर भी 'निर्दोषिता' के सिद्धांत को अवैयक्तिक रीति से लागू करना तब संभव है जब हम प्रवर्तन विधि की मशीनरी को इस दृष्टि से देखें कि यह सत्ता के रूप में राज्य द्वारा की गई एक कार्रवाई है और इसे एक संगठन के रूप में राज्य के विरुद्ध निर्दोषता का तर्क लागू करके करे, न कि व्यक्तियों के विरुद्ध वैयक्तिक रूप में।

अनौचित्य।

10.6. अपवर्जनकारी नियम के समर्थन में एक और तर्क है जो अनौचित्य (नावाजिब) तर्क है। यह कहा जाता है कि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य का ग्रहण किया जाना अभियुक्त के प्रति अनुचित या अन्यायपूर्ण होगा। इस विषय पर इंग्लैंड के नियम का पारम्परिक आधार यही था।[1]

न्यायिक प्रक्रिया की शुद्धता।

10.7. एक तर्क, जो आधुनिक समय में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है और जो काफी शक्तिशाली है, मुकदमा लड़ने वाले व्यक्ति के आचरण या भर्त्सनादायक तत्व की अपेक्षा न्यायिक प्रक्रिया की शुद्धता और ईमानदारी पर अधिक जोर देता है। इस तर्क के अनुसार विचाराधीन प्रश्न केवल अवैध आचरण के विनियमन और दोषकर्ता को उसके दोषपूर्ण कार्य के फायदे से वंचित करने का ही नहीं है बल्कि यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता का है कि न्याय प्रणाली किसी ऐसी सामग्री से दूषित न हो जाए जो अवैधपूर्ण कार्य के किए जाने से मूलतः प्राप्त की गई थी। न्यायालय की ईमानदारी का संरक्षण करने के लिए ऐसे साक्ष्य का अपवर्जन अनुचित समझा जाता है और इसके लिए न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है या उसे यह अनुमति दी जाती है कि वह विधिविरुद्ध कार्रवाईयों को मानने से इन्कार कर दे।

विगमोर के मत की समालोचना।

10.8. इसे तर्क में अपने को स्वीकृत कराने के लिए बहुत शक्ति है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि साक्ष्य के विषय के प्रतिष्ठित अमरीकी लेखक विगमोर ने यह मत अपनाया कि यद्यपि न्यायालय अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को ग्रहण करता है फिर भी वह ऐसा करके अवैधता को माफ नहीं करता है बल्कि केवल उसकी उपेक्षा करता है।[2] इस प्रतिष्ठित विधि-वेत्ता द्वारा अभिव्यक्त मत का बहुत आदर अवश्य किया जाना चाहिए। किन्तु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय का निपटारा करने के लिए यह पूर्णतया संतोषजनक ढंग नहीं है। यदि यह मान भी लें कि न्यायालय अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य का ग्रहण करके केवल अवैधता की उपेक्षा करता है तब भी न्यायालय ऐसा करके अपने को अवैधता में अप्रत्यक्ष रूप से फंसा देता है। इस विस्तार तक न्यायालय उस प्रक्रिया का एक पक्षकार बन जाता है जिससे विधि और न्यायिक प्रक्रिया के प्रति अनादर उत्पन्न हो सकता है। विधि के इतने अधिक नियम लोकनीति पर आधारित हैं (व्यापक अर्थ में) कि जिनके द्वारा न्यायालय कतिपय आचरण की स्वीकृति देने से इस सिद्धान्त पर इन्कार करता है कि विधि किसी ऐसी गम्भीर अवैधता की सहायता नहीं कर सकता जो सभ्य समाज के लिए अशोभनीय है। अपवर्जनकारी प्रकृति के किसी नियम को अपनाना इस प्रवर्ग के विधिक नियमों के सामंजस्य में होगा। न्याय प्रणाली को अदूषित रखने के लिए इच्छुक ऐसे तर्क को संक्षेपतः खारिज नहीं किया जा सकता।

विधि में सामंजस्य और विधि का विकास।

10.9. अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य का अपवर्जन करने के लिए नियम या विवेकाधिकार होने के न्यायोचित्य में एक और भी तर्क है जो ऐसी बात पर आधारित है जिसे विधि में सामंजस्य और विधि का विकास कहा जा सकता है। संक्षेप में यह तर्क इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है,—यदि अवैध तलाशी और अभिग्रहण द्वारा प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित करने का विकल्प न्यायाधीश को प्राप्त नहीं है तो इसका अर्थ यह है कि न्यायालयों में ऐसे आचरण की संवीक्षा बहुत ही कम बार की जाएगी। तब दाण्डिक विचारणों में पुलिस के आचरण की वैधता एक ज्वलन्त विवाद्य विषय नहीं रहेगा ऐसा और कोई प्रक्रम (स्टेज)

1. कैलिस बनाम गन (1963) 2 आल० ई० आर० 677।
2. विगमोर—"एवीडेन्स" (मेकनाटन रिवीजन 1961) वाल्यूम 8, आर्टिकल 2175।

नहीं होगा जब पुलिस अधिकारियों से उनके कार्यों के औचित्य के बारे में उनकी प्रति परीक्षा की जा सके और सफाई पक्ष के काउन्सेल को ऐसे विवाद्यक उठाने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं रहेगा। तलाशी और अभिग्रहण की विधि का विकास अव्यवस्थित ढंग से चलता रहेगा (यदि विकास हुआ तो) जो अतिचार (ट्रेसपास) के लिए पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध सिविल कार्रवाइयों के जरिए या अभियोजनों के अनुचित संदर्भ में उस कान्स्टेबुल द्वारा "बाधा" डालने के आर्थ के लिए किया जाए जिसने अपने कर्तव्य पालन में ऐसा कार्य किया था। इसके विपरीत, अपवर्जन का नियम या विवेकाधिकार विधि में सामंजस्य और उसके समुचित विकास में सहायता कर सकता है।

अपवर्जन के विरुद्ध तर्क।

10.10. अपवर्जनकारी नियम को प्रारंभ करने के विरुद्ध यह तर्क किया जाता है कि जहां साक्ष्य विवाद्य तथ्यों के लिए तर्कसंगत रूप से सुसंगत हैं वहां ऐसे साक्ष्य को इस तथ्य के होते हुए भी कि वह अवैध रूप से प्राप्त किया गया था निम्नलिखित कारणों से ग्रहण किया जाना चाहिए :—

(i) तथ्य के अधिकरण (ट्रिब्यूनल) का प्रमुख प्रयोजन सत्य की खोज करना है और साक्ष्य के अवैध अर्जन का तथ्य उस साक्ष्य की तर्कसंगत सुसंगता पर कोई प्रभाव नहीं डालता और न्यायालय को संपार्श्विक जांच नहीं करनी चाहिए ;

(ii) अवैध कार्यों के करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध ऐसी अन्य अनुशास्तियां और उपाय विद्यमान हैं जो दोषकर्ता को भयोपरत करने के लिए अधिक वाजिब है बजाय इसके कि साक्ष्य के अपवर्जनकारी नियम को लागू किया जाए, और

(iii) जब पक्षकार अवैधपूर्ण कार्य में अन्तर्ग्रस्त नहीं था तब उसे अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य का प्रयोग करने से वंचित करना उसके प्रति घोर अन्याय होगा।

संपार्श्विक जांच।

10.11. अपवर्जनकारी नियम को किसी रूप में प्रारम्भ करने के विरुद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण तर्क[1] संपार्श्विक जांच के प्रति आपत्ति है। यह तर्क किया जाता है कि दाण्डिक विचारण में ऐसे नियम के लागू किए जाने से संपार्श्विक जांच के कारण विलम्ब हो सकता है और न्यायालय का ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट हो सकता है। इसी तर्क को दूसरे रूप में कह सकते हैं कि जिस तरीके से साक्ष्य प्राप्त किया जाता है उसे संपार्श्विक विवाद्य-विषय कहते हैं और वह न्यायालय के समक्ष जांच का केन्द्रीय या मुख्य विवाद्य विषय नहीं है। न्यायालय का सरोकार विवाद्यक के तत्वों का विश्लेषण करने से है और इसलिए उसे ऐसे तर्कों को नहीं सुनना चाहिए जो उसका ध्यान जांच के अधीन केन्द्रीय या मुख्य विवाद्यकों से दूर अन्य क्षेत्रों की ओर आकृष्ट करे। यह तर्क एक अमरीकी विनिर्णय (रूलिंग) में स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसे ऐसे समय पर सुनाया गया था जब उस देश में अपवर्जनकारी नियम उस समय तक स्थापित नहीं हुआ था। हमारा विचार है कि ऐसा परिसाक्ष्य (अवैध रूप से प्राप्त) ग्रहणीय है। न्यायालयों की यह नीति नहीं है और यह व्यवहारिक भी नहीं है कि किसी मुकदमें के विचारण में रूका जाए और इस प्रश्न पर संपार्श्विक जांच शुरू की जाए कि साक्षी के कब्जे में जो जानकारी है उसे प्राप्त करने में दोषपूर्ण कार्य किया गया था या नहीं।[2]

अभियुक्त के अधिकारों का पुष्टिकरण।

10.12. इसके विपरीत यह कहा जाता है कि यद्यपि अपवर्जनकारी नियम से दाण्डिक विचारण में संपार्श्विक जांच उत्पन्न हो जाती है फिर भी इससे अभियुक्त के अधिकारों का तत्काल पुष्टीकरण हो जाता है और इसके लिए उसे कई खर्चीली कार्यवाहियां शुरू करने की जरूरत नहीं पड़ती। अभियुक्त को वैकल्पिक उपाय उपलब्ध हो सकते हैं लेकिन ऐसे वैकल्पिक उपाय सदैव पर्याप्त नहीं होते।[3] दोषकर्ता के विरुद्ध दाण्डिक कार्यवाहियों

1. पिछला पैरा 10.10 (i)।
2. क्लुयेट बनाम ओलेनथाल (1894) 100 मिच० 193, 53एन० डब्ल्यू० 1009, 1010।
3. पिछला पैरा 10.4।

में अनेक बाधाओं को पार करना पड़ता है, जैसे सबूत का भार और पुलिस के व्यक्ति के प्रति न्यायालय की सम्पादित सहानुभूति। किन्तु अवैधता के शिकार व्यक्ति को सम्भवत: यह मालूम न हो कि दाण्डिक कार्यवाही किस प्रकार शुरू की जाए या वह ऐसा करने में समर्थ न हो, विशेषकर उस दशा में जब कि वह गरीब अशिक्षित है या ठीक इसी कारण से कारावास में है कि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य उसके विरुद्ध ग्रहण किया गया था। इसकी भी सम्भावना नहीं है कि राज्य पुलिस पदाधिकारियों के विरुद्ध दाण्डिक कार्यवाहियां शुरू कर सकेगी। एक अमरीकी न्यायाधीश के शब्दों में "स्वयं-समीक्षा एक महान् आदर्श है किन्तु यदि हम यह आशा करते हैं कि जिला एटर्नी सहयोगियों के द्वारा आदेश दिए गए छापे के दौरान तलाशी और अभिग्रहण खण्ड के ऐसे उल्लंघनों के लिए भी, जो अच्छे मन्तव्य से किए गए हों, स्वयं अपने विरुद्ध या अपने सहयोगियों के विरुद्ध अभियोजन करेगा तो ऐसा सोचना इस आदर्श को बहुत ऊंचा उठा देना है।[1]

अत: यद्यपि तकनीकी दृष्टिकोण से अवैधता की जांच सांयोगिक हो फिर भी वह न्याय के हित में अपेक्षित है।

मूल प्रश्न।

10.13. सरसरी तौर पर यह विचार व्यक्त किया जा सकता है कि विवाद का यह भाग मूल प्रश्न के सम्बन्ध में है जो साधारण तौर पर साक्ष्य की विधि पर विचार करने में बारबार उठता है, अर्थात् न्यायिक विचारण में तथ्य संबंधी जांच के विस्तार की क्या सीमाएं होनी चाहिए और कहां पर प्रत्यक्ष सुसंगता तथा ऐसे विषयों के बीच, जो प्रत्यक्ष रूप से संगत नहीं है, विभाजन की रेखा खींची जानी चाहिए।

वैकल्पिक उपाय।

10.14. अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के अपवर्जन के नियम के विरुद्ध दूसरी सम्भावित आपत्ति[2] इस तर्क पर आधारित है कि ऐसे अवैध कार्य के विरुद्ध प्रतिकर के लिए वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है। आजकल ये वैकल्पिक उपाय दाण्डिक अनुशासित या अपकृत्य (टार्ट) के उपायों और अनुशासनिक कार्रवाई के रूप में हैं। इस पहलू की चर्चा पहले ही की जा चुकी है।[3]

अन्यायपूर्ण होने का तर्क।

10.15. अन्ततः यह तर्क किया जाता है कि[4] अभिकथित अवैधता में जो पक्षकार अन्तर्ग्रस्त नहीं है उसे ऐसे साक्ष्य का प्रयोग करने से वंचित करना उसके प्रति घोर अन्याय होगा। इस तर्क में स्वाभाविक रूप से कुछ बल है किन्तु यह आपत्ति उस समय असंगत हो जाती है जब कोई व्यक्ति राज्य को एक ऐसी सत्ता या ऐसे संगठन के रूप में देखता है जो विधि के प्रवर्तन के विभिन्न प्रक्रमों में व्यस्त है।[5] जिन कृत्यकारियों के जरिए यह प्रक्रिया की जाती है वे विभिन्न प्रक्रमों पर विभिन्न व्यक्ति हो सकते हैं और समय-समय पर बदल सकते हैं किन्तु संगठन वही बना रहता है। अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को ग्रहण करने से इन्कार करने की न्यायिक अनुशास्ति इस प्रकार व्यक्ति विशेष के विरुद्ध लागू नहीं होगी बल्कि संपूर्ण रूप में देखने पर संगठन के विरुद्ध लागू होगी।

संवैधानिक पहलू।

10.16. अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के अपवर्जन के पक्ष और विपक्ष के तर्कों में, जिनका संक्षेपीकरण ऊपर किया गया है, निःसन्देह संवैधानिक पहलू पर ध्यान नहीं दिया गया है। एक विशिष्ट देश में जहां संविधान-द्वारा गारन्टी दिए गए अधिकारों का प्रश्न विवाद्य विषय है, इस प्रकार का विवाद भिन्न रूप धारण कर लेता है। तब विधि का ऐसे

---

1. वूल्फ बनाम कोलोराडो (1940) 338 यू० एस० 26, 42 जस्टिस मर्फी के अनुसार (विसम्मति प्रकट करते हुए)।
2. पिछला पैरा 10.10 (ii)।
3. पिछला पैरा 10.4।
4. पिछला पैरा 10.10 (iii)।
5. तुलना कीजिए पिछले पैरा 10.5 से।

मूल्यों से सरोकार हो जाता है जिनका महत्व संविधान द्वारा बढ़ जाता है। ऐसे देशों में अपवर्जनकारी नियम को प्रारंभ करने के लिए जोरदार रूप से तर्क किया जा सकता है। यही बात वस्तुतः अमरीका में हुई थी जहां अमरीकी संविधान का चौथा संशोधन, जो नागरिक को अन्य बातों के साथ-साथ अनुचित तलाशी और अभिग्रहण के विरुद्ध संरक्षण देता है, अन्ततः उस नियम का आधार बना जो अवैध तलाशी या अभिग्रहण के परिणाम-स्वरूप अर्जित साक्ष्य को अपवर्जित करने के लिए है। इसी आधार पर अमरीका में न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि राज्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे राज्य के दाण्डिक विचारणों में राज्य अधिकारियों द्वारा अवैध रूप से अभिग्रहित साक्ष्य को नामंजूर कर देंगे।[1] अमरीका के सुप्रीम कोर्ट ने इसी बात को दूसरे शब्दों में यह मत व्यक्त करते हुए कहा है "अपवर्जनकारी नियम का प्राथमिक प्रयोजन भविष्य में पुलिस के विधिविरुद्ध आचरण को भय उत्पन्न करके रोकना है और ऐसा करके चौथे संशोधन की इस गारन्टी को लागू करना है जो अनुचित तलाशी और अभिग्रहण के विरुद्ध है"।[2]

भारतीय संविधान के अधीन स्थिति।

10.17. अवैध साक्ष्य का ग्रहण अपवर्जित करने के नियम या विवेकाधिकार को अपनाना अब भारत में एक संवैधानिक अनिवार्यता या अभिष्ट मांग बन जाती है किन्तु इस प्रश्न का उत्तर विधि की वर्तमान स्थिति में निश्चित रूप में नहीं दिया जा सकता क्योंकि इस विषय पर कोई प्रत्यक्ष नजीर या आप्तवचन नहीं है। हमारे संविधान में अमरीका के चौथे संशोधन के ठीक समान कोई उपबन्ध नहीं है। जहां तक भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में अधिकथित "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" की धारणा का सम्बन्ध है उसे साक्ष्य की विधि में लागू किया जाना अभी स्पष्ट करना बाकी है। यद्यपि इस अनुच्छेद के बारे में अनेक न्यायिक निर्णयों ने इसकी संवृद्धि की है और हमारे संवैधानिक न्याय संबंधी विधिशास्त्र को नए आयाम प्रदान किए हैं किन्तु इस समय विवादग्रस्त यह विशिष्ट प्रश्न न्यायालयों में केवल एक बार को छोड़कर[3] दूसरी बार नहीं उठा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह प्रश्न न्यायालयों में किसी दिन उठेगा। जब यह उठेगा तब न्यायालयों से कठिन निर्णय करने की मांग की जाएगी लेकिन उन्हें वास्तविक अध्ययन के लिए अनेक आदर्श उपलब्ध होंगे।

लचीले दृष्टिकोण की आवश्यकता।

10.18. विचार विमर्श के अधीन विषय के पक्ष और विपक्ष की बातों की परीक्षा करने से यह प्रतीत होगा कि इस क्षेत्र में कोई अन्तिम स्थिति नहीं है। एक ओर तो यदि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को विचारण में ग्रहण नहीं किया जाता है तो कुछ मामलों में घोर अन्याय हो सकता है और न्याय करने वाले न्यायालयों के रूप में न्यायालयों के लिए आदर कम हो सकता है। दूसरी ओर ऐसे भी मामले हैं जिनमें अवैध आचरण इतने स्तम्भित कर देने वाले हैं कि न्यायालय ऐसे साक्ष्य को ग्रहण करना अन्याय समझेंगे। अवैधता की कई कोटियां हैं और यह प्रतीत होगा कि इसी कारण से अधिकांश मामलों में विधि में लचीले तत्व होने से न्याय के हितों की सेवा अच्छी हो सकेगी बजाय इसके कि अपवर्जन के कठोर नियम का अन्धा अनुसरण किया जाए। इसके साथ ही जिस प्रश्न पर अवश्य विचार किया जाना चाहिए वह यह है कि क्या भारत में वर्तमान स्थिति न्याय से सुसंगत है?

इन विचारों को दृष्टि में रखते हुए हमें इस विषय पर विचार करना है। हम आगे सम्यक् अनुक्रम में प्रत्येक विवाद्य-विषय पर अपने विचार अधिक यथार्थ रूप से व्यक्त करेंगे।[4]

---

1. **माप बनाम आहियो** (1961) 367 यू० एस० 643।
2. **यू० एस० बनाम केलन्ड्रा** (1974) 414 यू० एस० 338, 347 (जस्टिस पावेल, न्यायालय के लिए बोलते हुए)।
3. आर० एम० मलकानी का मामला ए० आई० आर० 1973 सुप्रीम कोर्ट 153।
4. आगे (अध्याय 11)।

अध्याय 11

विचारणीय विवाद्यक और सिफारिशें

विवाद्यक।

11.1. पिछले अध्यायों में किए गए विचार-विमर्श को दृष्टि में रखते हुए अब उन महत्वपूर्ण विवाद्यकों को निरूपित करना आसान हो सकता है जिन पर विचार किया जाना आवश्यक है। मोटे तौर पर ये विवाद्यक निम्नलिखित रूप में प्रतीत होते हैं :—

(1) भारत में इस समय दाण्डिक मामले में ऐसे साक्ष्य की, जो अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त किया गया है, ग्राह्यता से सम्बन्धित वर्तमान विधि क्या न्याय-संगत और उचित है?

(2) यदि वर्तमान विधि में सुधार किया जाना है तो क्या इस सुधार को कानूनी रूप दिया जाना चाहिए जिससे न्यायालयों को (दाण्डिक विधि के मामले में) यह विवेकाधिकार दिया जाए कि वह अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य का अपवर्जन कर सके? या यह अधिक उग्र सुधारवादी होना चाहिए?

(3) यदि ऐसा विवेकाधिकार, जैसा कि ऊपर प्रतिपादित किया गया है, दाण्डिक न्यायालय को प्रदान किया जाने वाला है तो इस निमित्त कानूनी उपबन्ध में किन बातों को अधिकथित करना चाहिए?

(क) क्या कानूनी उपबन्ध में यह अधिकथित किया जाना चाहिए कि प्रदान किए जाने वाले विवेकाधिकार का प्रयोग इस बात को ध्यान में रख कर किया जाए कि जिन परिस्थितियों में उपाप्त साक्ष्य को अपवर्जित करने की आवश्यकता है वे ऐसी हैं जिनसे न्याय प्रशासन की बदनामी होगी? या

(ख) क्या कानूनी संशोधन में यह उपबन्ध किया जाना चाहिए कि प्रदान किए जाने वाले विवेकाधिकार का प्रयोग इस बात को ध्यान में रखकर किया जाए कि जिस पक्षकार के विरुद्ध साक्ष्य का उपयोग किया जाना चाहा गया है उसे अन्याय से बचाना आवश्यक है?

(ग) क्या प्रस्तावित कानूनी संशोधन (प्रश्न 2–3 ऊपर) में उन परिस्थितियों का भी आगे और विवरण देना चाहिए जिन पर इस विवेकाधिकार का प्रयोग करने में ध्यान दिया जाना चाहिए?

सुधार की आवश्यकता के बारे में निष्कर्ष।

11.2. आयोग ने विभिन्न विवाद्यकों पर सावधानी से विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य को अपवर्जित करने का विवेकाधिकार न्यायालय को प्रदान करने की आवश्यकता उस दशा में है जब कि मामले की परिस्थितियों में ऐसे साक्ष्य को ग्रहण करने से न्याय प्रशासन की बदनामी होगी। निःसन्देह इस विवेकाधिकार का मार्गदर्शन कुछ बातों से होगा जिन्हें हम यथार्थ विधायी संशोधन का सुझाव देते समय विस्तार से बताएंगे। हमें अपने मुख्य निष्कर्ष के लिए कारणों का अधिक विस्तार से कथन करने में समर्थ बनाने के लिए विचारणीय विवाद्यकों का उल्लेख करना आसान लगता है।

प्रथम विवाद्यक सुधार की आवश्यकता।

11.3. प्रथम विवाद्यक[1] के बारे में, जिसमें विधि के सुधार की आवश्यकता का प्रश्न उठाया गया है, हमारी राय है कि भारत में वर्तमान स्थिति[2], जिसके अधीन विशिष्ट कार्यवाहियों में विवाद्यक तथ्यों के साक्ष्य की विधिक "सुसंगतता" मुख्य विचारणीय प्रश्न है, पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं मानी जा सकती। समय-समय पर ऐसे मामले अवश्य उठेंगे जिनमें अवैधता या अनौचित्य इतना स्तम्भित कर देने वाले और क्रूरतापूर्ण होंगे कि न्यायपालिका

1. पिछला (पैरा 11.1)।

2. पिछला, पैरा 2.3 और 2.7 और अध्याय 3।

यह चाहेंगी कि उसे साक्ष्य को अपवर्जित कर देने की शक्ति होनी चाहिए थी। किन्तु वर्तमान भारतीय विधि में ऐसी शक्ति को मान्यता देने वाला कोई विनिर्दिष्ट उपबन्ध नहीं है। भारत में विधिक स्थिति के बारे में जो बात साधारण रूप से समझी जाती है वह न्यायालय को बहुत संकीर्ण सीमाओं के अन्दर रखती है। इस विषय को प्राथमिक रूप से विनिर्दिष्ट कानूनी उपबन्ध के निर्वचन की दृष्टि से देखा जाता है—यदि और जहां किसी विशिष्ट मामले में विवाद्य ढंग के साक्ष्य के संग्रह करने को विनियमित करने का कानूनी उपबन्ध का विद्यमान होना दर्शित किया जाए। यदि किसी ऐसे विशिष्ट उपबन्ध पर, जो अर्थान्वयन के लिए सामने आए, समुचित विचार करने पर न्यायालय उस उपबन्ध द्वारा साक्ष्य को ग्रहण करने से वर्जित नहीं मान सकता हो तो न्यायालय के पास उस साक्ष्य को नामंजूर करने के लिए कोई अवशेष शक्ति नहीं है चाहे उस साक्ष्य के संग्रह करने में कितनी भी गम्भीर अवैधता की गई हो और चाहे विधि का प्रवर्तन करने से सम्बद्ध व्यक्तियों ने मानव गरिमा का कितने विस्तार तक भी अतिक्रमण किया हो। इस स्थिति से, जो प्रमुख विधिक पद्धतियों में प्रचलित सभी चारों आदर्शों (माडलों[1]) के प्रति संकीर्णतम दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है, कई अवसरों पर अवश्य अन्याय हो जाता है।

वर्तमान भारतीय स्थिति में प्रमुख कमी यह है कि वह विधि सम्मत और कानूनी दृष्टिकोण को परिलक्षित करती है जो गहनतम मानव मूल्यों पर किसी प्रकार के विचार किए जाने पर रोक लगा देती है। हमारा यह विचार है कि न्यायालय में ऐसी शक्ति होने को मान्यता दी जानी चाहिए कि वह उन सभी महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान दे जो न्याय प्रशासन का भार उठाने वाली एजेंसियों के कार्य करने में मूल रूप से सुसंगत है।

दूसरा विवाद्यक—विवेकाधिकार का दिया जाना।

11.4. अतः विधि में सुधार की आवश्यकता स्पष्ट रूप से है। इसके साथ ही हम यह भी मानते हैं कि साक्ष्य के ऐसे अंश को केवल इस कारण ग्रहण न करने का आज्ञापक उपबन्ध कि उसे संग्रह करने में कुछ अवैधता की गई थी रखना उपयुक्त नहीं होगा। ऐसा उपबन्ध बहुत कठोर होगा और जीवन में उत्पन्न होने वाली अनगिनत ढंग की परिस्थितियों पर ध्यान दिए जाने को रोक देगा। यही यथार्थ विचारणीय बात है जिससे वर्तमान स्थिति में इन बातों पर ध्यान नहीं दिया जा सकता और इस प्रकार यह भी दूसरी कठोर स्थिति है। दोनों अत्यन्तिक कठोर स्थितियों से बचना चाहिए। अतः हम आज्ञापक कानूनी उपबन्ध की बजाय न्यायालय को विवेकाधिकार प्रदान किए जाने को पसन्द करेंगे। ऊपर उठाए गए दूसरे प्रश्न का यही उत्तर है।[2]

तीसरा विवाद्यक—शासित करने वाली विचारणीय बात।

11.5. यह तर्कसंगति के आधार पर उस तीसरे प्रश्न पर जिसे हमने उठाया है, ध्यान आकृष्ट करता है।[3] शासित करने के लिए कौन सी विचारणीय बात होनी चाहिए जिसे न्यायालय को प्रस्तावित विवेकाधिकार का प्रयोग करने में ध्यान देना चाहिए क्या शासित करने वाली विचारणीय बातें निम्नलिखित होनी चाहिए—

(i) यह तथ्य कि जिन परिस्थितियों में साक्ष्य उपाप्त किया गया था ऐसी थीं कि उस साक्ष्य को ग्रहण करने से क्या न्याय-प्रशासन की बदनामी होगी?

(ii) जिस पक्षकार के विरुद्ध ऐसे साक्ष्य का प्रयोग किया जाना चाहा गया है उस पक्षकार को क्या अनौचित्य से बचाने की आवश्यकता है।

ऊपर मद (i) और (ii) में जो बातें कही गई हैं उन्हें वैकल्पिक रूप में समझना है। वस्तुतः ये बातें कार्यसंचालन पत्र में इसी प्रकार रखी गई थीं। सावधानी से विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पहली मद शासित करने के लिए विचारणीय

1. पिछले पैरा 2.3 से 2.6 तक।
2. पिछला पैरा 11.1।
3. पिछला पैरा 11.1।

बात होनी चाहिए। दूसरी मद, जो अनौचित्य के परीक्षण पर आधारित है, के पक्ष में कुछ बातें कही जा सकती हैं किन्तु यह कभी-कभी अस्पष्ट हो सकती हैं। जहां तक पहली मद का सम्बन्ध है वह उचित रूप से एक ऐसी कसौटी है जिसे इंकार नहीं किया जा सकता। इसके अलावा यह भी बात है कि न्यायालय से अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किए जाने में यह आशा की जाती है कि वह विभिन्न परिस्थितियों पर ध्यान देगा (अगले पैरा में सिफारिश को देखिए) जिससे न्यायालय को विनिश्चय करने में सहायता मिलेगी।

चौथा विवाद्यक—विचारणीय बातें।

11.6. विधान बनाने की सिफारिश करने से पहले अब हम चौथे और अन्तिम विवाद्यक की चर्चा करेंगे जिस पर विचार करना बाकी है-[1] क्या विधि में उन परिस्थितियों की परिगणना की जानी चाहिए जिन्हें न्यायालय अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य का अपवर्जन करने में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय ध्यान में रखें? हमारा विचार है ऐसा प्रगणन होना चाहिए। हम यह जानते हैं कि ऐसा प्रगणन कभी अन्तिम या निःशेष नहीं हो सकता और इसलिए इनकी उपयोगिता सीमित हो सकती है। फिर भी हमारा विचार है कि महत्वपूर्ण मार्गदर्शन की बातें विनिर्दिष्ट मामलों में सहायक हो सकती हैं। हमारे ध्यान में जो मार्गदर्शक बातें हैं वे उस विधायी उपबन्ध के प्रारूप में स्पष्ट हो जाएंगी जो हम इस अध्याय के अन्त में दे रहे हैं[2] उस प्रारूप में हमने मानव गरिमा और सामाजिक मूल्यों को सबसे आगे रखा है। एक अर्थ में ये दोनों विचारणीय बातें न्यायालय को दिए जाने वाले प्रस्तावित विवेकाधिकार के कानूनी उपबन्ध के लिए नैतिक न्यायोचित्य हैं।[3] इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह समन्वित धारणा प्रत्येक मामले के संदर्भ में लागू की जाएगी। इस संदर्भ को तीन ठोस बातों में[4] बताना चाहिए जिनका हमने अपने प्रारूप में उल्लेख किया है और जो मामले की गम्भीरता, साक्ष्य के महत्व तथा जानबूझकर हानि, से यदि कोई की गई है तो, सम्मिलित करने के लिए आशयित है।

हमने विधि के प्रवर्तन की आवश्यकताओं पर—जो अभी तक प्रगणित बातों का सम्भवतः सन्तुलन कर सकती है—अपने द्वारा सिफारिश की गई धारा के अन्तिम खंड में सम्यक् ध्यान दिया है।[5] इसके द्वारा न्यायालय से यह आशा की जाती है कि वह इस बात पर विचार करेगा कि क्या ऐसी कोई परिस्थिति थी जो उस कार्य को न्यायोचित ठहराती है जिसके बारे में अवैध या अनुचित होने की शिकायत की गई थी।

सिफारिश।

11.7. उपर्युक्त विचार विमर्श की दृष्टि में रखते हुए हम यह सिफारिश करते हैं कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में एक नया अध्याय, जिसके अन्तर्गत एक नई धारा 166क हो, निम्नलिखित रूप में अन्तःस्थापित किया जाना चाहिए:—

अध्याय 10क

अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य

166क. (1) किसी दाण्डिक कार्यवाही में, जब यह दर्शित किया जाता है कि साक्ष्य में कोई वस्तु अवैध या अनुचित साधनों से प्राप्त की गई थी तब न्यायालय अवैधता या अनौचित्य की प्रकृति और उन सभी परिस्थितियों पर, जिनमें वह प्रस्तुत वस्तु प्राप्त की गई थी, विचार करने के पश्चात् उस दशा में उसे साक्ष्य में ग्रहण करने से इंकार कर सकता है जिसमें न्यायालय की यह राय है कि उन अवैध या अनुचित साधनों की प्रकृति के कारण जिनके द्वारा वह प्राप्त की गई थी, उसके ग्रहण किए जाने से न्याय प्रशासन की बदनामी होगी।

---

1. पिछला पैरा 11.1।
2. आगे पैरा 11.7 (साक्ष्य अधिनियम की धारा 166 का जिस रूप में इसकी सिफारिश की गई है)।
3. धारा 166 क (2) (क) जिस रूप में इसकी सिफारिश की गई है।
4. धारा 166 क (2)(ख) से (घ) तक, जिस रूप में उनकी सिफारिश की गई है।
5. धारा 166 क (2)(घ), जैसी सिफारिश की गई है।

(2) यह अवधारित करने में कि साक्ष्य को इस धारा के अधीन अपवर्जित करना चाहिए या नहीं न्यायालय कार्यवाहियों से सम्बद्ध सभी परिस्थितियों पर और उस रीति पर जिसमें वह साक्ष्य प्राप्त किया गया था, विचार करेगा जिनके अन्तर्गत निम्नलिखित बातें भी होंगी:—

(क) साक्ष्य प्राप्त करने में मानवगरिमा और सामजिक मूल्यों का किस विस्तार तक उल्लंघन किया गया था;

(ख) मामले की गम्भीरता;

(ग) साक्ष्य का महत्व;

(घ) यह प्रश्न कि अभियुक्त या अन्य व्यक्तियों की कोई हानि जानबूझकर की गई थी या नहीं, और

(ङ) यह प्रश्न कि ऐसे कार्य को न्यायोचित ठहराने वाली परिस्थितियां थीं या नहीं, जैसे कि अनिवार्य स्थिति जिसमें साक्ष्य नष्ट किए जाने या खो जाने को रोकने के लिए कार्य करना अपेक्षित था।"

(के० के० मैथ्यू)
अध्यक्ष

(नसीरुल्लाह बैग)
सदस्य

(जे० पी० चतुर्वेदी)
सदस्य

(डा० एम० बी० राव)
सदस्य

(पी० एम० बख्शी)
अंशकालिक सदस्य

(वेणा पी० सारथी)
अंशकालिक सदस्य

(ए० के० श्रीनिवासमूर्ति)
सदस्य-सचिव

तारीख, 28 अक्तूबर, 1983

प्र० भा० स० मु० को०—सें4—40 एम एफ एल जे और सी ए एन दि/83—24-8-85-250
MGIPCBE—S4—40 M of LJ & CA/ND/83—24-8-85—250.

परिशिष्ट

अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त साक्ष्य की दृष्टांत स्वरूप कुछ स्थितियां

इस दृष्टि से कि ठोस चर्चा की जाए, कुछ स्थितियों की दृष्टांत स्वरूप सूची नीचे दी गई है जिनमें प्रथम दृष्ट्या कहा जा सकता है कि साक्ष्य अवैध या अनुचित रूप से प्राप्त किया गया है। किसी स्थिति को सूची में यहां देने से आवश्यक रूप से यह निकलित नहीं होता है कि उस विशेष स्थिति में विवेक का प्रयोग प्रश्नगत साक्ष्य के अपवर्जन में किया जाना चाहिए।

सूची में दी गई स्थिति के सामने तत्स्थानी पाद टिप्पण में उद्धृत मामले का उल्लेख अंतर्वलित, तथ्यों के लिए किया गया है। न्यायालय ने ऐसे प्रत्येक मामले में साक्ष्य का अपवर्जन नहीं किया है।

1. गिरफ्तारी

   (क) विधिविरुद्ध गिरफ्तारी;

   (ख) अभिरक्षा से विधिविरुद्ध हटाना

2. भौतिक परीक्षण

   (क) अभियुक्त के शरीर की अवैध तलाशी[1]

   (ख) अवैध रक्त परीक्षण[2]

   (ग) अवैध स्वास परीक्षण[3]

   (घ) अबंधित चिकित्सीय परीक्षण[4];

   (ङ) अभियुक्त की मत्तता का साक्ष्य प्राप्त करने के लिए चिकित्सीय परीक्षा जब कि अभियुक्त को यह बताया गया था कि परीक्षा यह जानने के लिए आवश्यक थी कि क्या वह बीमार है[5];

   (च) अभियुक्त की मत्तता का साक्ष्य प्राप्त करने के लिए चिकित्सीय परीक्षा जहां अभियुक्त को केवल यह बता कर की गई थी कि वह उसके लिए लाभप्रद है[6];

   (छ) अभियुक्त को बताए बिना उस के अंगुलियों की छाप लेना कि शायद वह उन्हें देने से इंकार न कर दें[7];

   (ज) अनिवार्य स्वास परीक्षण जो कि विधि द्वारा केवल कुछ गौण आरोपों उपयोग के लिए अनुज्ञात है, जहां इसका उपयोग अधिक गंभीर मामले में किया जाता है।

---

1. कुरमा बनाम आर (1955) ए०सी० 197 (पी०सी०)
2. अटर्नी जनरल आफ क्वैबैक बनाम बैगिन (1955) 5 डी एल०आर० 394 (सुप्रीम कोर्ट आफ कनाडा)
3. मर्चेंट बनाम आर० (1971) 45 ए० एल० आई० आर० 310 (हाई कोर्ट आफ आस्ट्रेलिया)
4. आर बनाम आयरलैंड (नं० 1) (1970) 126 सी० एल० आर० 321 (हाई कोर्ट आफ अस्ट्रेलिया)
5. आर बनाम पैने (1963) 1 आल० ई० आर० 848।
6. आर बनाम लोवेल (1948) 1 आल० ई० आर० 794
7. कोलिस बनाम गन्न (1964) 1 क्यु बी० 495।

3. संपत्ति की तलाशी

संपत्ति की अवैध तलाशी[1] ;

4. एकांतता का भंग (जिसके अंतर्गत संसूचना को बीच में रोकर मालूम करना है)

(क) अवैध टेलीफोन टैपिंग[2] ;

(ख) अभियुक्त को गलत रूप से यह बता कर अवैध रूप से फ्लोटो लिया गया कि यह अनिवार्य था[3];)

(ग) कनसुई लेना (ईब्ज्ड्रापिंग)[4-6]

(घ) भयारोहन करने वाले और विवद्ग्रस्त व्यक्ति के बीच बातचीत को छिपकर सुनना;[7]

(ङ) अभियुक्त द्वारा जेल में लिखा गया अपराध में फंसाने वाला पत्र जिसको जैलर ने डाक में डालने का वचन दिया था किन्तु जिसे अभियोजन को दिया गया ।[8]

5. विधिक सलाह की प्रत्याख्यान

(क) संस्वीकृति जो संस्वीकृति करने वाले का सालिसिटर की सलाह नामंजूर करने पर प्राप्त की गई हो ।[9]

6. विधि-प्रवर्तन अभिकरण द्वारा अपनाई गई पूर्तता

(क) पुलिस कर्मी द्वारा अपने को मजिस्ट्रेट बताने के कारण प्राप्त साक्ष्य[10];

(ख) चिकित्सीय परीक्षा से भत्तता का साक्ष्य जो अभियुक्त से यह कहा गया था कि केवल यह पता करने के लिए है कि क्या वह बीमार है ।[11]

7. फंसाना

एजेंट प्रकोपक का उपयोग[12-13]

---

1. मैक फलैन बनाम शार्प (1972) एन०जेड०आई०आर० 64
2. आर बनाम मैथ्यूज (1972) वीआर 2 (सुप्रीम कोर्ट आफ विक्टोरिया)
3. आर बनाम आयरलैंड (नं० 1) (1970) 126 सी० आई० आर० 321
4. आर बनाम व्यूक्कन (1964) 1 डब्ल्यू एल०आर० 865
5. आर बनाम मक्सूदअली (1965) 2 आल०ई०आर० 464
6. आर बनाम स्टेबर्ट (1970) 1 डब्ल्यू०एल०आर० 907
7. होप्त बनाम एच० एम० एडवोकेट (1960) आई०सी० 104 (स्काटलैंड)
8. आर बनाम डेरिंगटन (1826) 172 ई० आर० 188 किन्तु देखिए रंपिंग बनाम डी०पी०पी० (1964) ए०सी० 814
9. आर बनाम एलियन (1977) क्रिमि० एल०आर० 163
10. आर बनाम पैट्रिपीए (1972) 7 सी०सी०सी० (2 डी) 133 (बनाडा)
11. आर बनाम पेने (1963) 1 आल०ई०आर० 848
12. आर बनाम अमीर (1977) क्रिमि० एल०आर० 104, 105
13. संयुक्त राज्य अमेरिका वे स्थिति के लिए देखिए टिप्पण :
एन्ट्रैपमैंट ऐज ए ड्यू प्रोसेस डिफेंस; हैम्पटन बनाम यू० एस० 56 एस०सी०टी 1646 (1982) विटर, 57 इंडियन ला जे० 89, 130 के पश्चात् विकास ।

©

PLD. 92. LXXXXIV (H)
250-1984 (DSK. IV)

मूल्य : (देश में) रु 62.50 या (विदेश में) £ 7.29 या $ 22.50

विक्रेता — (1) प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, भारत सरकार, भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110 001 ।

(2) प्रकाशन-नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110 054 ।